आलोक

साहित्य अकादेमी राजभाषा पत्रिका

अंक 3 सितंबर वर्ष 2004-05





समापन समारोह में **आलोक** के विगत अंक का लोकार्पण करती हुई कृष्णा सोबती
साथ में खड़े हैं, बाएँ से—ब्रजेन्द्र त्रिपाठी, निशांत और के. सच्चिदानंदन



उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि महीप सिंह, ब्रजेन्द्र त्रिपाठी (बाएँ) और रणजीत साहा (दाएँ)

आलोक

साहित्य अकादेमी राजभाषा पत्रिका

अंक : 3 सितंबर वर्ष 2004-05

राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य

संरक्षक/प्रकाशक

के. सच्चिदानंदन

संपादक

ब्रजेन्द्र त्रिपाठी

सहयोग

देवेन्द्र कुमार देवेश



साहित्य अकादेमी

Aalok: Third issue of the Ṣahitya Akademi's Annual House-magazine in Hindi, edited by Brajendra Tripathi, Sahitya Akademi, New Delhi (2004).

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : स्वाति, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई 400 014

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स,
डायमंड हार्बर रोड, कोलकाता 700 053

सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी.आर. आंबेडकर मार्ग, बंगलौर 560 001

चेन्नई कार्यालय

गुना बिल्डिंग, मेन बिल्डिंग्स (द्वितीय तल), 443(पुराना नं. 304)
अन्नासालइ, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

आवरण चित्र : रेखा के. राणा

शब्द संयोजक एवं मुद्रक : विकास कंप्यूटर एंड प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032



शिवराज पाटील

SHIVRAJ V. PATIL

गृह मंत्री, भारत

HOME MINISTER, INDIA

संदेश

प्रिय देशवासियो,

हिंदी दिवस के अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

हमने अपने लिए संविधान का जो स्वरूप निर्धारित किया है उसकी एक अहम बात अपनी राजभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करना है। स्वराज का हमारा ध्येय जन-जन को उसका लाभ पहुँचाना है। सामाजिक और आर्थिक न्याय सबको समान रूप से मिले, यह हमारा लक्ष्य है। उन्नति और विकास में हर नागरिक को साम्य-युक्त लाभ और इसके लिए हर एक का सहकार मिले, यह हमारा प्रयास है। जनता और शासन मिल-जुलकर इस दिशा में बढ़ सकें, इसके लिए हम सबका एकमत होना जरूरी है। अपनी राजभाषा का प्रयोग करके हम ऐसा सामंजस्य बिठा सकते हैं। हम एक स्वर में बोलें, एक साथ चलें, एक होकर चलें तो कोई भी मंजिल दूर नहीं।

अनेक क्षेत्रों में दुनिया के अग्रणी देशों में से हमारा भारत भी एक है। यह हमारी क्षमता का प्रतीक है कि आज हम इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियों का मुकाबला करने में सक्षम हैं। विकास की नई संभावनाओं को हमने सहज रूप से अंगीकार कर लिया है। हमारे सुदृढ़ जनतंत्र की सराहना अब सारी दुनिया करने लगी है। हमारी स्वतंत्र न्याय प्रक्रिया स्थापित हो चुकी है। देश की सर्वांगीण प्रगति के लिए हमारी आर्थिक नीतियाँ काफी कारगर साबित हुई हैं। आर्थिक विकास के हमारे प्रयासों को अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग मिल रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्र की हमारी उपलब्धियाँ मान्यता पाने लगी हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में ज्ञान संचालित समाज का निर्माण हो रहा है। यह समय है जब भारतीय प्रतिभाओं को पनपने का हर अवसर उपलब्ध कराना है। इस काम में हमें अपनी भाषाओं को समृद्ध और विकसित करना है जिससे हमारे नागरिक ज्यादा से ज्यादा योगदान कर सकें। हम जितना अधिक अपनी भाषा में सोचेंगे और अपने आपको व्यक्त करेंगे उतना ही अधिक फल मिलेगा। प्रतिभाओं के मुखर होने के लिए अपनी भाषा का प्रयोग बहुत योगदान करता है। अतः, हमें अपनी राजभाषा हिन्दी का अधिक-से-अधिक प्रयोग करना होगा। इसके लिए केंद्र सरकार के कर्मचारियों को अपना सरकारी कामकाज हिन्दी में करना चाहिए। सहज व सरल हिन्दी का ज्यादा-से-ज्यादा प्रयोग रोजाना के कामकाज में करके हम सब इसकी श्रीवृद्धि कर सकते हैं।

जीवन के हर पहलू में हम अग्रणी हो रहे हैं तो भाषा के प्रयोग में भी हों, तभी हम अपनी अपेक्षाओं को पूरा कर सकेंगे। हम अपनी समृद्ध बौद्धिक परंपरा के साथ आधुनिक ज्ञान को मिलाकर और भी तेज गति से प्रगति कर सकते हैं, अगर हम अपनी भाषा का प्रयोग करें।

मुझे आशा है कि केंद्र सरकार के सभी कार्मिक आज यह दृढ़ निश्चय करेंगे कि वे अपना काम राजभाषा हिन्दी में करेंगे।

जय हिंद।

नई दिल्ली
14 सितंबर, 2004

(शिवराज वि. पाटील)



सत्यमेव जयते
नीना रंजन
Neena Ranjan
Tel : 23386995, 23381040
Fax : 23384093

सचिव
भारत सरकार
संस्कृति मंत्रालय
नई दिल्ली-110 001
SECRETARY
GOVERNMENT OF INDIA
MINISTRY OF CULTURE
NEW DELHI-110001

अपील

हिन्दी दिवस-2004 के अवसर पर आप सभी को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। आप सभी जानते हैं कि 14 सितंबर, 1949 को भारत की संविधान सभा ने देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था तभी से प्रतिवर्ष इस दिन को हम हिन्दी दिवस के रूप में मनाते आ रहे हैं।

हमारे लिए यह गौरव का विषय है कि भारत अनेक भाषाओं से समृद्ध है। तथापि इस विशाल बहुभाषी राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने में हिन्दी की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

संस्कृति मंत्रालय और मंत्रालय के अन्य संबद्ध/अधीनस्थ/स्वायत्तशासी कार्यालयों से मेरी अपील है कि वे सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाएँ, राजभाषा अधिनियम 1963 व राजभाषा नियमावली 1976 के प्रावधानों का अनुपालन सुनिश्चित करें और राजभाषा विभाग द्वारा प्रत्येक वर्ष जारी वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सघन प्रयास करें। अधिकारियों से मेरी विशेष अपील है कि वे फाइलों पर छोटे-छोटे वाक्य स्वयं हिन्दी में लिखकर हिन्दी में काम करने की पहल करें जिससे अधीनस्थों को भी प्रेरणा मिले। आज के सूचना प्रौद्योगिकी युग में हिन्दी सीखना, सिखाना और उसमें काम करना और भी आसान हो गया है। संस्कृति मंत्रालय से संबंध रखने के नाते हिन्दी के विकास, प्रचार एवं प्रसार के प्रति हमारा दायित्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि हिन्दी भाषा भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है।

आइए, हम संकल्प लें कि राजभाषा हिन्दी को हम निष्ठा से अपने दिन प्रति दिन के सरकारी कामकाज में अधिक से अधिक प्रयोग करके अपना संवैधानिक कर्तव्य निभाएँगे।

नीना रंजन

(नीना रंजन)

प्रकाशकीय

चिली भाषा के कवि निकानोर पाररा ने एक बार युवा कवियों से कहा था, "आप जैसा चाहें लिखें। कोई भी मार्ग अलंघ्य नहीं है; पुल के नीचे से बहुत रक्त प्रवाहित हो चुका हैं। आपको मात्र ख़ाली पृष्ठों पर आगे बढ़ना चाहिए।"

मैं समझता हूँ, किसी भी नए लेखक को दी जा सकनेवाली यह सर्वाधिक उचित सलाह है।

लेकिन ख़ाली पृष्ठों पर बढ़ना सहज नहीं हैं; व्यास और वाल्मीकि के समय से ही असंख्य पृष्ठ लिखे जा चुके हैं। साहित्य अनेक आंदोलनों से गुज़रा है और लेखन की विविध विधाओं और शैलियों को इसने जन्म दिया है। नया लेखक कभी-कभी सोचता है कि सब कुछ कहा जा चुका है और उसके कहने के लिए अब कुछ भी नहीं बचा। प्रायः यह कहा जाता है कि दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसके बारे में व्यास ने *महाभारत* में न लिखा हो, लेकिन हम जानते हैं कि किसी शहर में आधुनिक मनुष्य के दैनंदिन अनुभव ऐसे हैं, जिन्हें व्यास ने सपने में भी सोचा नहीं होगा। कोई कह सकता है कि आधारभूत भावनाएँ तो समान ही हैं, कुरुक्षेत्र के युद्ध और आधुनिक परमाणु युद्ध में तारतम्य बिठाया जा सकता है, यद्यपि हम जानते हैं कि अनुभवों की बुनावट, संरचना और व्यापकता में आधारभूत परिवर्तन हो चुके हैं। मनुष्य ने हमेशा प्रेम और घृणा की है, वह पीड़ा से गुज़रा है तथा खुशियाँ मनाई हैं—लेकिन प्रेम, घृणा, पीड़ा और आनंद के माध्यम आज वही नहीं हैं, जो कल थे। इस नए अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए नई भाषा ज़रूरी है। आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की आकांक्षाएँ वैसी नहीं हैं, जो किसी राजतांत्रिक देश की हुआ करती थीं। आज के मनुष्य के नए तरह के द्वंद्व हैं, उसे नई लड़ाइयाँ लड़नी हैं, नए तरह के सपनों को साकार करना है। लेखक का लक्ष्य केवल तभी पूरा होता है, जब वह किसी अनाम को पहचान देता है और बेजुबान को जुबान देता है। उसे एक ही समय में एक नया शास्त्र और एक नई सौन्दर्य दृष्टि की रचना करनी होती है। उसे *अरेबियन नाइट्स* के शेहरज़ादे की तरह सुलतान की तलवार से बचने के लिए कहानियाँ सुनानी हैं—हम मौत से बचने के लिए लिखते हैं।

आलोक उन विनम्र लेखकों की एक छोटी-सी पत्रिका है, जो साहित्य अकादेमी के कर्मचारी हैं। उनमें से अधिकांश ने लिखना शुरू ही किया है, नौसिखियों की स्वाभाविक घबराहट और उत्साह उनके लेखन में देखे जा सकते हैं, तथापि हम आशा कर सकते हैं कि साहित्य के इतिहास में इन क्षीण, परंतु नए स्वरों की भी अपनी जगह है। सुंदर ग्रामीण दृश्यावलियों को देखने के लिए गलियों से गुज़रना ज़रूरी है—वे दृश्यावलियाँ, जिन्हें हम राजमार्गों से नहीं देख सकते; और एक अकेली कोयल कभी वसंत का सृजन नहीं कर सकती। इस गृह पत्रिका की सार्थकता अकादेमी में कार्यरत लेखन-प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने में है। इसका उद्देश्य साहित्यिक अभिव्यक्ति और अनुवाद की भाषा के रूप में हिन्दी को बढ़ावा देना भी है। मुझे उम्मीद है कि यह अंक आम पाठकों का ध्यान आकृष्ट करेगा; विशिष्ट पाठकों के लिए तो और भी मंच हैं। मैं इन सभी लेखकों तथा पाठकों का स्वागत करता हूँ, जिन्होंने साहित्य को संभव बनाया है।

हिन्दी दिवस, 2004

के. सच्चिदानंदन
सचिव

राजभाषा पर्व 2003

(12-19 सितंबर 2003)

साहित्य अकादेमी ने अपने प्रधान कार्यालय में 12 से 19 सितंबर 2003 तक 'राजभाषा पर्व' का सफल आयोजन किया। उद्घाटन समारोह में अकादेमी के कार्यक्रम अधिकारी श्री ब्रजेन्द्र त्रिपाठी ने मुख्य अतिथि और समस्त उपस्थित सहकर्मियों का स्वागत किया और हिन्दी की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला। मुख्य अतिथि डॉ. महीप सिंह ने कहा कि कोई भी भाषा तभी विकास करती है, जबकि उस भाषा के बोलनेवालों को सम्मान प्राप्त हो तथा रोज़गार प्राप्त करने में सहूलियत हो। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि मातृभाषा में ही प्राथमिक शिक्षा दी जानी चाहिए, हालाँकि सभी भाषाएँ समान रूप से सम्मानीय हैं। उन्होंने हिन्दी दिवस को 'भारतीय भाषा दिवस' के रूप में मनाए जाने का प्रस्ताव किया। इस अवसर पर अकादेमी के उपसचिव डॉ. रणजीत साहा ने हिन्दी को अनुराग की भाषा से अनुच्छेद, अनुवाद, अनुदान, अनुनय और अनुताप की भाषा में बदल जाने की बात करते हुए इस कटु यथार्थ को सामने रखा कि हिन्दी आज भी राजकाज की भाषा नहीं बन पाई है और राजभाषा के नाम पर सिर्फ़ बंदरबाँट ही हो रही है। इस अवसर पर हिन्दी अनुवादक निशांत ने साहित्य अकादेमी के कार्यालयीन व्यवहार में हिन्दी भाषा के कार्यान्वयन संबंधी प्रगति का एक संक्षिप्त प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। कार्यक्रम के अंत में उपसंपादक देवेन्द्र कुमार देवेश ने औपचारिक धन्यवाद-ज्ञापन करते हुए कहा कि आज जो विचारोत्तेजक विमर्श और सवाल हमारे सामने उभरकर आए हैं, उससे निश्चय ही हिन्दी भाषा, उसकी अस्मिता और विकास तथा उससे जुड़ी हमारी सभ्यता-संस्कृति की अस्मिता को बनाए रखने के लिए हमें प्रेरणा मिलेगी।

सप्ताहकालीन 'राजभाषा पर्व' के विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत निबंध-लेखन, वाद-विवाद, प्रश्न-मंच, काव्य-पाठ और श्रुतलेख प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। जिनमें हिन्दी और अहिन्दी दो वर्गों में प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार दिए गए।

समापन समारोह में अकादेमी की राजभाषा पत्रिका *आलोक* के द्वितीय अंक का लोकार्पण करते हुए लब्धप्रतिष्ठ हिन्दी कथाकार श्रीमती कृष्णा सोबती ने हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार और विकास में जनसंचार माध्यमों—प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक—दोनों को, इस बात के लिए धन्यवाद दिया कि इनके कारण हिन्दी भाषा का संसार और ज़्यादा विस्तृत हुआ है। उन्होंने कहा कि चिन्तन, समाज, साहित्य, बोलचाल, कार्यसंस्कृति और टेक्नोलॉजी की भाषा अलग-अलग होती है तथा कार्यसंस्कृति की भाषा होने के कारण हिन्दी भाषा स्वीकार्य है और हो रही है। हिन्दी साहित्य जगत में पिछले कुछ दिनों में पैदा हुए तथा चर्चित विवादों का ज़िक्र करते हुए उन्होंने कहा कि इस तरह की बातों से भाषा और साहित्य दोनों की गरिमा नष्ट होती है।

साहित्य अकादेमी के सचिव प्रो. के. सच्चिदानंदन ने वैश्वीकरण के इस दौर में विभिन्न भाषाओं पर आनत ख़तरे की ओर इशारा करते हुए कहा कि किसी भी भाषा की सक्षमता इस बात में होती है कि वह अपने परिक्षेत्र में बोली जानेवाली बोली और भाषाओं तथा सहभाषाओं का कितना सम्मान करती है और उनसे शब्द संपदा को कितना ग्रहण करती है। हिन्दी भी इसी रूप में सक्षम है और इसीलिए सम्मान्य है। इसके पहले अपने स्वागत भाषण में अकादेनी के उपसचिव श्री· ब्रजेन्द्र त्रिपाठी ने इस बात पर चिन्ता प्रकट की कि अपनी भाषा को लेकर जो गर्व का भाव हमारे भीतर होना चाहिए, आज की पीढ़ी में उसका अभाव नज़र आता है। उन्होंने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि हमें अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य का विरोध नहीं, बल्कि इससे जुड़ी गुलाम मानसिकता का विरोध करना होगा।

इस अवसर पर राजभाषा पर्व के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में सफल होनेवाले प्रतिभागियों को कृष्णा सोबती जी ने पुरस्कार प्रदान किए। कार्यक्रम के अंत में उपसंपादक देवेन्द्र कुमार देवेश ने औपचारिक धन्यवाद ज्ञापन करते हुए राजभाषा पर्व के सफल आयोजन के लिए अकादेमी के कर्मचारियों/अधिकारियों को बधाई दी तथा समापन समारोह में श्रीमती कृष्णा सोबती की गरिमामय उपस्थिति के लिए उनके प्रति आभार प्रकट किया।

प्रस्तुति : निशांत

अनुक्रम

आलेख

कविता

कहानी

अनुस्मरण

अध्यात्म-चर्चा

विविध

संपादकीय

आलोक का तीसरा अंक आपके हाथों में है। अकादेमी की इस राजभाषा पत्रिका की धीरे-धीरे एक पहचान वन रही है। इसके पिछले दोनों अंक जिन लोगों के हाथों में पहुँचे हैं, उन्होंने इसकी सराहना की है और इससे इसके संपादन, प्रकाशन से जुड़े लोगों और इसके लिए रचनाएँ उपलब्ध करानेवाले हमारे सहयोगियों का उत्साहवर्धन हुआ है। *आलोक* के पिछले अंक में हमने हिन्दी भाषा परामर्श मंडल के कुछ सदस्यों की रचनाएँ भी प्रकाशित की थीं, लेकिन इस बार अकादेमी की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में निर्णय लिया गया कि इसमें हम केवल अकादेमी-कर्मियों की रचनाएँ ही प्रकाशित करें।

यह सचमुच ही प्रसन्नता की बात है कि हम अकादेमी के अपने सहयोगियों के रचना सहयोग से यह राजभाषा पत्रिका निकाल पा रहे हैं। निश्चय ही इसमें उस सृजनात्मक परिवेश की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है, जो यहाँ सहज उपलब्ध है। आशा है, यह पत्रिका उनकी सृजनात्मकता को धार देने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी। इस पत्रिका के लिए न केवल हमें दिल्ली स्थित मुख्यालय के अपने सहयोगियों का रचनात्मक सहयोग मिला है, बल्कि कोलकाता, मुंबई और बंगलोर स्थित क्षेत्रीय कार्यालयों के सहयोगियों का भी। हम ऐसे सभी सहयोगियों के आभारी हैं।

हिन्दी न केवल राजभाषा के नाते हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है, बल्कि इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि वही एक ऐसी भाषा है, जो पूरे देश को एक सूत्र में जोड़ सकती है। अगर कोई भाषा सचमुच देश की संपर्क भाषा हो सकती है तो वह हिन्दी ही है, क्योंकि सुदूर पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक यह समझी जाती है। खड़ी बोली हिन्दी का इतिहास भले सवा सौ-डेढ़ सौ वर्षों का हो, हिन्दी अपने अलग-अलग रूपों में हज़ार वर्षों से अधिक समय से बोली-समझी जाती रही है। अपभ्रंशों से होते हुए यह विभिन्न बोलियों के रूप में विकसित हुई और कुछ बोलियों में इसका साहित्यिक रूप इतना परिपुष्ट हुआ कि ब्रजभाषा जैसी लोकभाषा न केवल मध्यदेश की साहित्यिक भाषा बन गई, बल्कि इसने बंगाल, असम, गुजरात, महाराष्ट्र और दकन तक अपनी पैठ बनाई। इसी प्रकार अवधी में भी साहित्यिक रचनाधर्मिता का उभार देखने को मिला। दूसरी बोलियों में भी लोक साहित्य का प्राचुर्य देखने को मिलता है।

बाद में जब खड़ी बोली मानक हिन्दी के रूप में विकसित हुई तो उसने इन बोलियों से शब्द लेकर अपने को समृद्ध बनाया। अगर आज हिन्दी इतनी सक्षम और धारदार बन सकी है तो उसमें इन बोलियों की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। हिन्दी आज दूसरी भारतीय भाषाओं से भी शब्द ग्रहण कर अपने को समृद्ध और व्यापक बना रही है। हिन्दी की इस शक्ति को रवीन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचंद्र सेन, राजा राममोहन राय, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी आदि ने समझा था और कहा था कि यही एक ऐसी भाषा है, जिसके माध्यम से पूरे देश को एक साथ संबोधित किया जा सकता है। महात्मा गाँधी ने तो हिन्दी को देश के स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जोड़कर इसे एक व्यापक रूप प्रदान कर दिया था।

हिन्दी ही वह भाषा रही, जिसने मध्यकाल में जाति-पाँति, छुआछूत, ऊँच-नीच के विभेद और सामाजिक विषमता के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद की। हिन्दी आज भी कमोबेश अपनी वह भूमिका निभा रही है। हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपनाने का अर्थ दूसरी भाषाओं की उपेक्षा नहीं है। हिन्दी अपने इस दायित्व का निर्वहन भली-भाँति तभी कर सकेगी, जब वह दूसरी भारतीय भाषाओं को साथ लेकर चलेगी। इसके लिए हिन्दीभाषियों को भी दूसरी भारतीय भाषाओं को सीखना होगा, उनमें काम करना होगा। तभी हम हिन्दी को राजभाषा के पद पर वास्तविक अर्थों में प्रतिष्ठित कर पाएँगे।

ब्रजेन्द्र त्रिपाठी

निर्मलकांति भट्टाचार्जी

भारतीय साहित्य : एकता, अनेकता और इतिहास

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला द्वारा सन् 1972 में आयोजित एक संगोष्ठी में संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रो. एन. आर. राय ने अपने स्वागत भाषण में भारतीय साहित्य की एकता के संघर्ष पर निम्नांकित शब्दों में सवाल उठाया था, "साहित्य निश्चित रूप से भाषा-आधारित है और एक सांस्कृतिक प्रतिभास होने के कारण भाषा पूरी तरह से अपनी स्थानिक एवं सामाजिक-ऐतिहासिक विशिष्टिताओं से अनुकूलित होती है।" निष्कर्ष रूप में उनका मानना था कि इसीलिए यह कहना तर्कसंगत होगा कि भारत में जितनी भाषाएँ हैं, उतनी ही तरह के साहित्य भी हैं। लेकिन साहित्य अकादेमी के प्रथम सचिव कृष्ण कृपलानी ने अपने बीज-भाषण में कुछ अलग ही तरह के विचार रखे, "जब मैं यह स्वीकार करता हूँ कि भारतीय साहित्य विविध आयामी और भिन्न हैं, मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि इनमें एक आंतरिक एकता है, जिसकी प्रासंगिता वास्तविक से अवधारणात्मक अधिक है।" आधुनिक भारतीय साहित्य के दो महान अध्येताओं के ये विपरीत विचार ही इस विषय की पृष्ठभूमि हैं, जिस पर हम विचार कर रहे हैं—भारतीय साहित्य की एकता, अनेकता और इतिहास।

कुछ लोग अभी भी यह मानते हैं कि साहित्यिक संस्कृति की पहचान पूरी तरह से उस भाषा के माध्यम से की जा सकती है, जिसमें वह अभिव्यक्त है। इस तरह की मान्यता, जो अपने राजनीतिक अभिप्राय के कारण हानिकर है, कम-से-कम भारतीय संदर्भों में प्रामाणिक नहीं है। यदि ऐसा होता तो अंग्रेज़ी में लिखा जानेवाला भारतीय साहित्य या तो ब्रिटेन या अमेरिका के जीवन का चित्रण होता, न कि भारतीय—जो कि निश्चित रूप से इसका उद्देश्य नहीं रहा। भाषा उन घटकों में से एक है, जो किसी राष्ट्र की संस्कृति का निर्माण करते हैं, लेकिन यह उन आधारभूत विचारों का वहन अवश्य करती है, जिनका पोषण और निर्वाह किसी देश की जनता द्वारा होता है और जो इसकी सांस्कृतिक लोकाचार की संरचना करते हैं। भारत की साहित्यिक संस्कृति में किसी साधारण प्रेक्षक को इसकी प्रादेशिक विशिष्टता की जगह इसकी राष्ट्रीय पहचान ज़्यादा नज़र आती है।

ख़ैर, इस संदर्भ में आलोचकों की व्यक्तिगत मान्यताएँ हो सकती हैं, लेकिन सभी इस बात से सहमत हैं कि भारतीय साहित्य की एकता एक स्वीकृत परिकल्पना है। साथ ही, विभिन्न भाषाओं का साहित्य विलक्षण है, क्योंकि वह विशिष्ट विचारणीय विषयों को अपने में समाहित किए हुए है और हमारे साहित्य की एकता एवं समानता पर ज़ोर देने के उत्साह में इन विभिन्न विषयों को कम करके आँकना ग़लत होगा।

यदि कोई इस तथ्य को ध्यान में रखता है तो वह प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की साहित्यिक परंपरा में विद्यमान निरंतरता को देख सकता है। एक प्रचलित मान्यता है कि विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में लिखा जा रहा आधुनिक भारतीय साहित्य एक विशिष्ट पहलक़दमी है, परंपरा के प्रति विद्रोह नहीं है, विगत सौ वर्षों के दौरान या इससे पहले प्रस्तुत साहित्यिक कला की महान कृतियों की विशिष्टता से नहीं जन्मा है। रवीन्द्रनाथ, शरतचंद्र, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, सुब्रह्मण्यम भारती, शिवराम कारंत, तकषी शिवशंकर पिळ्ळे, पन्नालाल पटेल और श्री अरविन्द—ये कुछ ऐसे नाम हैं, जिनका कृतित्व अनुपम है और उसमें उस जीवन की प्रतिच्छवियों और लोकाचार को उन्होंने प्रस्तुत किया है, जो नितांत भारतीय है। यहाँ तक कि उनमें से अनेक ने धर्मनिरपेक्ष मानवीयता को अपने लेखन से बढ़ावा दिया है। रूप और संरचना के उनपर पश्चिमी प्रभाव भले ही नज़र आएँ, लेकिन भाव और विचार प्रत्यक्षतः भिन्न हैं।

वर्तमान में अतीत की यह निरंतरता भारत की सांस्कृतिक एकता के कारण ही संभव हुई है। यह एकता विविधता में है, विभिन्नता में नहीं; इसमें एकता का वह रूप नहीं है, जो अनेक चीज़ों को एक साथ रख देने से नज़र आती है,

बहुरंगी फूलों के गुच्छे की तरह। यह निश्चित रूप से परस्पर अनुप्राणित तथा टिकाऊ संरचना है। परिवेश की प्रत्यक्ष समानता, जो कृषि-आधारित जीवन, ज़मीन और परिवार से लगाव तथा जन्म, विवाह एवं मृत्यु से जुड़े रीति-रिवाजों के रूप में हैं; दूसरे शब्दों में पूरे देश में जीवन के लोकाचार की समानता इस एकता को शक्ति प्रदान करती है। युगों-युगों से यह एकरूपता न केवल जीवन की समान लय के रूप में प्रत्यक्ष है, वरन् सामाजिक परिवर्तन की प्रतिक्रिया एवं स्वीकृति तथा आवधिक विचलन के बाद सुधार अथवा लोच के तरीक़ों में भी नज़र आती है। कला और साहित्य में यह प्रमाण इसकी पारंपरिक अथवा लोकप्रिय एवं सामुदायिक प्रकृति के रूप में देखा जा सकता है। वास्तव में अन्य दूसरी चीज़ों की अपेक्षा अनुसंधान के बजाय अनुष्ठान का तत्त्व विशिष्ट भारतीय कला का चरित्र निर्धारित करता है। किसी भी स्थिति में, यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि किसी देश में, जो अपनी जातीय, धार्मिक और भाषिक विभिन्नता के कारण किसी महादेश से भी बढ़कर है; यह एकता तब तक बनी रहेगी, जब तक कि परिवर्तन की कोई विस्फोटक स्थिति नहीं आती। यह बात विशिष्ट है कि भारतीयता की इस चेतना के भाष्यकार, जैसे श्री चैतन्य और नानक, नामदेव और विवेकानंद तथा अन्य दूसरों ने लोगों को न केवल इस एकता का उपदेश दिया है, वरन् परिव्राजक के रूप में देश के कोने-कोने में यह संदेश यथासंभव फैलाने का प्रयत्न किया है।

लेकिन जैसा कि मैंने पहले कहा है, इस एकता पर ज़ोर देने के लिए हम अनेकता या विभिन्नता को नकार नहीं सकते, साहित्य की भाषा में बात करें, तो शैली, प्रतिपादन और तकनीक की विभिन्नता। भाषाओं के अप्रतिम साधक भी इन विभिन्नताओं के ज़िम्मेदार हैं। स्नाथिक मिथक और दंतकथाएँ, कथा-कहानियों की प्रादेशिक विविधताएँ तथा प्रत्येक वर्ग में विकास के स्तर ने भी इस विभिन्नता को बनाए रखने में अपना योगदान दिया है। 'नस्ल, पर्यावरण और क्षण' जैसा कि ताइने ने कहा है—ये चीज़ें प्रत्येक प्रादेशिक साहित्य की अलग पहचान बनाती हैं। यहाँ अब तक साझी विरासत की सशक्त अनुभूति मौजूद है तथा प्रत्येक भाषा का साहित्य भारतीयता के सकारात्मक चिह्नों को अपने में समेटे हुए है।

डॉ. शिशिर कुमार दास ने साहित्य अकादेमी के लिए भारतीय साहित्य का समग्र इतिहास लिखते हुए इस दिशा में महत्त्वपूर्ण बात कही हैं। उन्होंने इस विरोधाभासी तथ्य को बेहतर ढंग से विश्लेषित किया है कि हमारे पूर्वज भाषिक समस्या का समाधान हमसे ज़्यादा प्रभावी ढंग से करने में सफल रहे हैं। भारत के दो इतिहास *रामायण* और *महाभारत*, जो मूल रूप से संस्कृत में लिखे गए; अनुवाद, रूपांतरण, संक्षेप और नाट्यांतर जैसी साहित्यिक प्रक्रियाओं के माध्यम से प्रायः सभी स्थानों पर वहाँ की भाषाओं में मौजूद हैं। कालिदास ने अपने नाटक केवल संस्कृत में ही नहीं, वरन् शौरसेनी, महाराष्ट्री और मागधी जैसी प्राकृत बोलियों में भी लिखे। विद्यापति ने भी अपना लेखन विविध भाषा-रूपों में करके उनका अनुसरण किया। अशोक के शिला लेख, जो मूलतः पालि में लिखित हैं, देश के सभी भागों में पाए गए। अमीर खुसरो ने भी प्रसन्नता से यह बात स्वीकारी है कि भारत ने बिना किसी हिचक के अनेक भाषाओं का पोषण किया है। यह देखना आश्चर्यजनक है कि सैकड़ों वर्षों में भाषाओं और उनके साहित्य में बहुत ज़्यादा आदान-प्रदान हुए हैं, जबकि शायद ही ऐसी कोई तकनीकी प्रक्रिया मौजूद थी, जो इस तरह के साहित्यिक और सांस्कृतिक सामंजस्य की स्थिति पैदा करे। दुर्भाग्य से, हमारे समय में मतभेद और अविश्वास की केन्द्र-अपसारी ताक़तें बढ़ी हुई हैं। ऐसा लगता है कि समकालीन भारत में सांस्कृतिक समन्वय की कीमियागरी खो गई है।

जब महान तमिळ कवि सुब्रह्मण्यम भारती गाते हैं, "बोलने की अठारह, लेकिन सोचने की एक ही भाषा है।" तब यह दावे की जगह प्रार्थना अधिक है। क्योंकि आज हम अठारह भाषाओं को बोलनेवालों की अठारह सोचवाली बढ़ती प्रवृत्ति को सहज ही देख सकते हैं। कोई देश भू-भाग के कारण ही देश नहीं होता, बल्कि मानस के कारण होता है; इसलिए आज शायद यह ज़्यादा ज़रूरी है कि हमारे लेखक जनता की चेतना को सक्रिय करें, जिससे वह अनिवार्य एकता को साकार कर सके।

अंग्रेज़ी से अनुवाद : देवेन्द्र कुमार देवेश

ब्रजेन्द्र त्रिपाठी

वैश्वीकरण एवं हिन्दी

एक दीर्घकालीन स्वतंत्रता संघर्ष के बाद 15 अगस्त 1947 को भारत ब्रिटिश शासन की गुलामी से आज़ाद हुआ था। ब्रिटिश शासन के दौरान राजकाज की भाषा अंग्रेज़ी थी। जब देश स्वतंत्र हुआ तो यह आवश्यकता महसूस की गई कि कोई भारतीय भाषा ही देश के राजकाज की भाषा बने, क्योंकि कोई भी स्वतंत्र और स्वाभिमानी राष्ट्र किसी विदेशी भाषा को राजकाज की भाषा बनाकर अपनी अस्मिता की रक्षा नहीं कर सकता। देश के स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिन्दी देश को एकसूत्रता के बंधन में बाँधनेवाली भाषा के रूप में उभरकर सामने आई थी और इसकी इस शक्ति की पहचान उन्नसीवीं और बीसवीं सदी के दौरान ग़ैर हिन्दीभाषियों द्वारा ही की गई। राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सुभाषचंद्र बोस, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, महात्मा गाँधी, काका कालेलकर—इन सभी लोगों ने हिन्दी की व्याप्ति और इसके महत्त्व को पहचाना। उन्होंने महसूस किया कि हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसके माध्यम से पूरे देश को संबोधित किया जा सकता है। जब दयानंद सरस्वती ने संस्कृत के माध्यम से वेदों का प्रचार-प्रसार शुरू किया तो केशवचंद्र सेन ने उन्हें राय दी कि यह काम हिन्दी के माध्यम से ही सहजता से हो सकता है और स्वामी जी ने *सत्यार्थ प्रकाश* हिन्दी में लिखा।

महात्मा गाँधी ने कहा था कि कोई भी देश सच्चे अर्थों में तब तक स्वतंत्र नहीं है, जब तक वह अपनी भाषा में नहीं बोलता। स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् 14 सितंबर 1949 को हिन्दी को भारत की राजभाषा का दरजा मिला, इसीलिए 14 सितंबर को हम हिन्दी दिवस के रूप में मनाते हैं। 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू होने के लगभग पाँच वर्षों बाद केन्द्रीय कार्यालयों में हिन्दी के प्रयोग को मान्यता मिली। संविधान में यह व्यवस्था थी कि 1965 तक हिन्दी भारत की सह राजभाषा होगी और 1965 के बाद हिन्दी राजभाषा और अंग्रेज़ी सह राजभाषा होगी। इस सिलसिले में 1963 में राजभाषा अधिनियम बना और 1976 में राजभाषा नियम बने। हिन्दी के प्राचर-प्रसार का काम गृह मंत्रालय के अंतर्गत राजभाषा विभाग को सौंपा गया। इस कार्य में हिन्दी के कई संस्थानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, पर इन सबके बावजूद हिन्दी को जो स्थान मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाया है। हमें चाहिए कि इसके कारणों की पड़तालं करें कि राजभाषा हिन्दी आज अपने ही देश में इस दयनीय स्थिति में क्यों है?

अपने देश की भाषा को राजभाषा के रूप में स्थापित करने की चुनौती केवल भारत के ही सामने नहीं रही है; दूसरे महायुद्ध के पश्चात् विश्व के कई देशों के समक्ष यह चुनौती खड़ी हुई और उन्होंने अपने देश की अखंडता के परिप्रेक्ष्य में इसका समाधान ढूँढ़ा। सोवियत संघ भी बहुभाषी देश है और वहाँ के गणराज्यों की अपनी-अपनी भाषा है, लेकिन उन्होंने राष्ट्रीय एकता को कायम रखने के लिए रूसी को राजभाषा चुना। जापान ने विदेशी ज्ञान-विज्ञान और तकनीक तथा प्रौद्योगिकी को अपनाया लेकिन विदेशी भाषाओं का प्रवेश नहीं होने दिया। तुर्की-जैसे छोटे-से देश ने स्वतंत्र होने के साथ ही अपनी भाषा को राजकाज की भाषा बना दिया, लेकिन हम विदेशी शासन से मुक्ति के पचपन वर्षों बाद भी इस तरह के साहस का प्रदर्शन न कर सके। आख़िर क्यों?

'हिन्दी' अपने में एक व्यापक अर्थ संसार को समेटे हुए है। राजभाषा के रूप में हिन्दी का इतिहास तो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद शुरू होता है, लेकिन संपर्क भाषा के रूप में इसका इतिहास सदियों पुराना है। पिछले सांत-आठ सौ वर्षों से हिन्दी देश की संपर्क भाषा के रूप में व्यवहृत हो रही है। इन पिछले सात-आठ सौ वर्षों से रामेश्वरम से बद्रीनाथ तक और द्वारकापुरी से जगन्नाथपुरी तक यात्रा करनेवाले लोग इसी भाषा का उपयोग करते रहे हैं। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक व्यापार-वाणिज्य का काम भी हिन्दी से चलता रहा है। देश के सभी भूभागों के संतों, समाज सुधारकों और नेताओं ने हिन्दी के महत्त्व को समझा था। महाराष्ट्र में ग्यारहवीं तथा बारहवीं सदी में मराठी कवि मुकुंदराज और संत ज्ञानेश्वर ने इसकी महत्ता को स्वीकार किया। उन्नसीवीं सदी के उत्तरार्ध में गोपाल नरहरि देशपांडे तथा केशव वामन पेठे ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। गुजरात के कच्छ प्रदेश में राजा लखपति महाराज ने अठारहवीं सदी में भुज में ब्रजभाषा की पाठशाला खोलकर हिन्दी के प्रचार

का पथ प्रशस्त किया। नरसी मेहता, मालण, दयाराम तथा दलपत राम ने भी अपनी कविताओं के माध्यम से इसकी महत्ता को स्वीकार किया। पूरे मध्यकाल के दौरान भारत के विभिन्न भागों में संतों ने इसी भाषा में काव्य रचना की और उपदेश दिए। इसी भाषा में उन्होंने जाति-पाँति का विरोध किया, बाह्याडंबरों पर चोट की और मानवीय एकता का पाठ पढ़ाया। कबीर, तुलसी, मीरा, रैदास, नानक की भाषा यही थी।

और पहले देखें तो 13वीं सदी में अमीर ख़ुसरो इसी भाषा में काव्य रचना कर रहे थे। उनके पदों की भाषा और आज की हिन्दी में कोई विशेष अंतर नहीं है। उनकी पहेलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। एक उदाहरण देखें :

एक थाल मोतियों भरा, सबके सिर पर औंधा धरा
चारों ओर थाल वह फिरे, मोती उससे एक न गिरे।

अथवा उनके द्वारा रचित यह मुकरी देखिए :

वो आए तो शादी होय
उस बिन दूजा और न कोय
मीठे लागें वाके बोल
ऐ सखि साजन, ना सखि, ढोल।

कहने का तात्पर्य यह कि हिन्दी का एक मानक रूप उस ज़माने में सामने आ चुका था। अमीर ख़ुसरो ने इस भाषा के प्रति अपने प्रेम को इस प्रकार प्रकट किया है :

चूमन तूती-ए-हिन्दम अरवास्त पुरसी
जे मन हिंदवी पुरस ता नग्ज़ गोयम।

(अर्थात् मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ। अगर तुम कुछ पूछना चाहते हो तो हिन्दवी में पूछो, जिससे मैं तुम्हें अच्छी तरह बता सकूँ।)

उस दौर में बंगाल में 'ब्रजबुलि' नाम से हिन्दी में लिखा जा रहा था और असम में शंकरदेव इसी भाषा में पदावली रच रहे थे। दक्षिण में इसी का एक रूप 'दक्खिनी हिन्दी' के रूप में विकसित हुआ। इस भाषा को अनेक नामों से पुकारा गया—हिन्दी, हिन्दवी, दक्खिनी, गुजरी, दकनी, रेख़्ता तथा देहलवी आदि। मुहम्मद तुग़लक ने 1327 में दौलताबाद को जब अपनी राजधानी बनाया तो वहाँ हिन्दी का प्रचार प्रारंभ हुआ और 1330 से 1800 ई. तक वहाँ अनेक प्रसिद्ध कवि हुए, जिनमें ख्वाजा बंदानवाज़, गेसू दराज, लुत्फ़ी, मुल्ला वजही, गवासी, बहरी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उस दौर में दकनी में ऐसे शेर कहे जा रहे थे—

पिया बाज़ प्याला पिया जाए ना।
पिया बिन तो इक पल जिया जाए ना।

इस बात पर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए कि मध्यदेश में जो भाषाएँ बोली जाती थीं उन्हें 'भाषा' नाम से अभिहित किया गया। भाषा के साथ हिन्दी शब्द उर्दू शायर मीर के बाद जुड़ा। मीर के समय में उर्दू कवि अपनी भाषा को हिन्दी ही कहते थे :

क्या जानूँ लोग कहते हैं किसको सरूर-ए क़ल्ब
आया नहीं है लफ़्ज़ यह हिन्दी ज़बाँ के बीच।

मीर का क़लाम अपनी सादामिज़ाजी के लिए याद किया जाता है। आप उनकी शायरी को देखें तो लगेगा कि ये आज की हिन्दी में कहे गए हैं :

तुम मेरे पास होते हो गोया
जब कोई दूसरा नहीं होता।

या कि

सिरहाने मीर के आहिस्ता बोलो
अभी टुक रोते-रोते सो गया है।

ग़ालिब अपने एक शेर में अपने पूर्ववर्ती मीर को इस तरह याद करते हैं :

रेख़्ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब
कहते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था।

ग़ालिब की बाद की शायरी को देखें तो वहाँ भी भाषा की यही सहजता मिलेगी :

दुःख जी के पसंद हो गया है ग़ालिब
दिल रुककर बंद हो गया है, ग़ालिब
रातों को अब नींद आती ही नहीं
सोना सौगंध हो गया है ग़ालिब।

यह अकारण नहीं है कि कुछ लोग उर्दू को हिन्दी की एक शैली मानते हैं। महात्मा गाँधी ने कहा था, "हिन्दी उस भाषा का नाम है, जिसे हिन्दू और मुसलमान क़ुदरती तौर पर बिना प्रयत्न के बोलते हैं। हिन्दी और उर्दू में कोई फ़र्क़ नहीं है, देवनागरी में लिखी जाने पर वह हिन्दी और अरबी में लिखी जाने पर उर्दू कही जाती है। जो लेखक या व्याख्याता चुन-चुनकर संस्कृत और अरबी शब्दों का ही प्रयोग करता है, वह देश का अहित करता है। हमारी राष्ट्रभाषा में सब प्रकार के शब्द आने चाहिएँ जो जनता में प्रचलित हों।" बहुत-से लोग इस बात के पक्षधर रहे हैं कि उर्दू को फ़ारसी लिपि के बजाय देवनागरी लिपि में लिखा जाना चाहिए। राहुल सांकृत्यायन इसके ज़बर्दस्त समर्थक

रहे और इस मुद्दे पर उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी छोड़ दी थी। आज पाकिस्तान में जो शायरी लिखी जा रही है, उसे देवनागरी लिप्यंतरण में देखें तो यही लगेगा कि यह हिन्दी की ही रचना है :

दिल में इक लहर-सी उठी है अभी
कोई ताज़ा हवा चली है अभी।
शोर बरपा है ख़ाना-ए-दिल में
कोई दीवार सी गिरी है अभी।

अथवा यहाँ, हिन्दुस्तान में निदा फ़ाज़ली का ये दोहा देखें :

मैं रोया परदेस में भीगा माँ का प्यार
दिल ने दिल से बात की, बिन चिट्ठी बिन तार।

महात्मा गाँधी ऐसी हिन्दी के समर्थक थे, जो आम फ़हम हो। उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण काम यह किया था कि उन्होंने हिन्दी को स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जोड़ दिया था। 'स्वराज्य' की लड़ाई हिन्दी की भी लड़ाई बन गई थी। उन्हीं दिनों, उनकी प्रेरणा से दक्षिण में हिन्दी प्रचार-प्रसार का आंदोलन चला। 1918 में चेन्नई में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की गई। गाँधी जी ने तमिलनाडु में हिन्दी के प्रचार के लिए अपने पुत्र देवदास गाँधी को चेन्नई भेजा। लेकिन स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद एक बड़ा परिवर्तन यह आया कि हिन्दी के समर्थकों की संख्यां घट गई। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जो पहले हिन्दी के प्रबल समर्थक थे, हिन्दी के कट्टर विरोधी के रूप में उभरे।

आज बहुत-से शुद्धतावादी लोग शुद्ध हिन्दी की बात उठाते हैं। वे कहते हैं कि हिन्दी को विकृत किया जा रहा है। यहाँ एक बात पर हमें विचार करना होगा कि भाषा का उद्देश्य क्या है? भाषा का उद्देश्य है—संप्रेषण। भाषा का विकास ही इसलिए हुआ कि हम अपनी बात दूसरे तक पहुँचाना चाहते थे। इसलिए यदि हिन्दी किसी भी रूप में संप्रेषण का कार्य कर रही है तो वह स्वीकार्य होनी चाहिए। वह पंजाबी हिन्दी हो सकती है, बंगाली हिन्दी हो सकती है, मलयाली हिन्दी हो सकती है। हिन्दी की इन तमाम शैलियों को हमें स्वीकार करना होगा, तभी हिन्दी आगे बढ़ेगी। हमें तमाम भारतीय भाषाओं, क्षेत्रीय एवं जनजातीय भाषाओं से शब्दों को ग्रहण कर हिन्दी को जीवंत बनाना होगा। हमारी हिन्दी तभी धारदार हो सकेगी, तभी उसमें नई-नई अर्थ छायाएँ आकार ग्रहण कर सकेंगी। हमें अपनी हिन्दी को अधिक उदार बनाना होगा। आज के युग का यही तक़ाज़ा है।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में हिन्दी फ़िल्मों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। देश-विदेश में बहुत-से लोगों ने फ़िल्मों के माध्यम से हिन्दी सीखी। हिन्दी अच्छी तरह न जाननेवाले लोग आपको फ़िल्मी गाने गुनगुनाते हुए मिल जाएँगे। बाद में जब दूरदर्शन आया और टी.वी. के विभिन्न चैनेल आए तो उनके माध्यम से भी हिन्दी का प्रचार-प्रसार बढ़ा। विश्व के उन तमाम देशों में, जहाँ हिन्दी जाननेवाले लोग हैं, हिन्दी के टी.वी. सीरियल अत्यंत लोकप्रिय हैं। अभी कुछ दिनों पहले आपने ख़बर पढ़ी होगी कि पाकिस्तान में भारतीय टी.वी. चैनेल न दिखाए जाने के विरोध में वहाँ के केबल ऑपरेटरों ने सभी विदेशी चैनल दिखाने बंद कर दिए। यह हिन्दी की लोकप्रियता का प्रमाण है। बीच में कुछ दिनों तक रेडियो सुनना लोगों ने बंद ही कर दिया था, लेकिन तमाम एफ. एम. चैनेलों के आने के बाद एक बार फिर रेडियो कार्यक्रम लोकप्रिय हो गए हैं। इनके माध्यम से भी हिन्दी आगे बढ़ रही है।

आज का दौर वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण का है। इस दौर में सूचना प्रौद्योगिकी ने इतनी प्रगति की है आज दुनिया हमारे लिए बहुत छोटी हो गई है—एक विश्वग्राम बनकर रह गई है। विश्व के किसी भी कोने में कोई घटना हो तो उसकी धमक पूरे विश्व में सुनाई पड़ती है। वैश्वीकरण के इस परिप्रेक्ष्य में हमें हिन्दी को देखना होगा। आज जिस तरह का वैश्वीकरण हो रहा है, उसके अपने ख़तरे हैं। यह राष्ट्रों के आपसी सौहार्द, मेल-मिलाप और सहकारी भाव के ख़िलाफ़ है। यह चाहता है कि आज पूरे विश्व में एक राष्ट्र, एक भाषा, एक जीवन शैली और एक संस्कृति का प्रभुत्व हो। अगर वैश्वीकरण का इस तरह दौर जारी रहा तो भाषाओं और संस्कृतियों की विविधता नष्ट हो जाएगी। एक भविष्यवाणी यह भी है कि इक्कीसवीं सदी में संसार में कुल दस भाषाएँ बची रहेंगी, शेष नष्ट हो जाएँगी। और क्योंकि प्रत्येक भाषा किसी-न-किसी संस्कृति की वाहक होती है, इसलिए हमारी बहुत-सी संस्कृतियाँ नष्ट होने के कगार पर हैं। यह वैश्वीकरण एक कृत्रिम समानता लाने के लिए प्रयासरत है, जैसे हर चीज़ साँचे में ढलकर आ रही हो। यह स्थिति बहुत शोचनीय है। हज़ारों साल के अंतराल में निर्मित परंपराएँ अवशेष हो रही हैं, उनकी समृद्ध विरासत नष्ट हो रही हैं। खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, आचार-विचार ललित और उपयोगी कलाओं की समृद्ध विविधता ख़त्म होती जा रहे हैं। यह वैश्वीकरण हर चीज़ में समानता लाने

के लिए प्रयासरत है; मानों यह उपनिवेशवाद का एक नया अवतार है। यह विकासशील देशों को विवश कर रहा है कि वे अपनी संस्कृतियों, परंपराओं और भाषाओं को विस्मृति के गर्त में धकेल दें और प्रभु देशों की संस्कृति, भाषा और जीवनशैली को अपना लें।

और यह हो भी रहा है और बहुत तेज़ी से हो रहा है। इस वैश्वीकरण के साथ जो बाज़ार सीधे हमारे घरों में घुसा चला आ रहा है, सवाल यह है कि कैसे उससे हम अपनी संस्कृतियों, परंपराओं और जीवन-मूल्यों की रक्षा करें। वैश्वीकरण संस्कृति को एक उद्योग में परिवर्तित कर रहा है और उपभोक्ता संस्कृति को बढ़ावा दे रहा है। यह प्रत्येक क्षेत्र में नए मानक गढ़ रहा है। इसके लिए विजय या सफलता ही महत्त्वपूर्ण है, भले ही वह किसी साधन से प्राप्त की गई हो। साधन की पवित्रता की बात को इसने पूरी तरह ख़ारिज कर दिया है और अब सफलता ही एकमात्र मूल्य है, भले ही इसके लिए जो भी क़ीमत चुकानी पड़े। सफलता प्राप्त करने के लिए अब शरीर भी एक साधन हो गया है। किसी तरह के मूल्य और नैतिकता की बात करना अब पुरातनपंथी सोच है। सफलता ही अब एकमात्र ध्येय है। पश्चिमी दुनिया के सफल व्यापारी ही अब हमारे आदर्श हैं। महात्मा गाँधी के सपनों और आदर्शों की याद अब कोई नहीं करता। हाँ, 2 अक्तूबर को हम उन्हें ज़रूर याद कर लेते हैं और फिर हम सालभर के लिए उन्हें भूल जाते हैं। आज के इस वैश्वीकरण के दौर में उनकी कोई प्रासंगिकता नहीं रह गई है।

यह वैश्वीकरण तीसरी दुनिया के देशों पर युद्ध, हिंसा और आतंक थोप रहा है। कुछ समय पहले आपने अफ़ग़ानिस्तान में देखा, फिर इराक़ में देखा। इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं का कोई महत्त्व नहीं है। इसकी अपनी शर्तें हैं, अपनी नीति है, उसी पर पूरी दुनिया को चलना होगा। ऐसी स्थितियाँ पैदा की जा रही हैं कि आप इसकी अनदेखी करके नहीं चल सकते। ये एक तरह का साम्राज्यवाद ही है, जो अपनी भाषा और संस्कृति को दूसरों पर थोप रहा है। इस तरह की वैश्वीकृत दुनिया में हमारी प्राचीन संस्कृतियों, परंपराओं, भाषाओं, साहित्यों, कलाओं और जीवनादर्शों का कोई स्थान नहीं।

इस तरह के वैश्वीकरण का मुक़ाबला हम अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को दृढ़ करके ही कर सकते हैं। भाषा ही इस सांस्कृतिक अस्मिता की वाहक है। संस्कृति और परंपरा को हम भाषा में ही मुखरित होते देखते हैं। प्रत्येक भारतीय भाषा में राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति सजगता दिखाई पड़ती है। भारतीय भाषाओं की अस्मिता को अक्षुण्ण रखने के कार्य में कोई भी भारतीय भाषा दूसरे के लिए बाधक नहीं है। जो बाधा है, वह अंग्रेज़ी ने उत्पन्न की है। भारतीय भाषाओं के मध्य प्रतिद्वंद्विता राजनेताओं ने अपने राजनीतिक लाभ के लिए पैदा की है। अंग्रेज़ी ने भारतीय भाषाओं के समक्ष अस्तित्व का ख़तरा पैदा किया है, जो एक तरह की सांस्कृतिक पराधीनता को जन्म दे रहा है और यह पराधीनता राजनीतिक पराधीनता से भी अधिक पीड़ादायी है। अंग्रेज़ी आज सभी भारतीय भाषाओं के समक्ष एक चुनौती के रूप में खड़ी हुई है और इसका मुक़ाबला करने के लिए सभी भारतीय भाषाओं को एकजुट होना होगा। इसके लिए यह भी ज़रूरी है कि एक भारतीय भाषा को संपर्क भाषा के रूप में अपनाया जाए और इसके लिए हिन्दी से उपयुक्त कोई दूसरी भाषा नहीं हो सकती, क्योंकि भारत में यही भाषा सबसे अधिक बोली और समझी जाती है। यही एक ऐसी भाषा है, जो हमारी विभिन्न भाषाओं को एकसूत्र में पिरो सकती है और प्रेम, सौहार्द और एकता की भाषा हो सकती है। इसे भारतवासियों की आम भाषा के रूप में और विभिन्न भाषाओं के मध्य अनुवाद की मुख्य भाषा के रूप में विकसित होना चाहिए। इसे सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों और अभिव्यक्तियों को स्वीकार कर अपना विस्तार करना चाहिए। हिन्दी अपनी विभिन्न बोलियों—भोजपुरी, अवधी, बघेली, बुंदेली, ब्रज, कौरवी, गढ़वाली, कुमाऊँनी, हरियाणवी, मालवी, निमाड़ी, छत्तीसगढ़ी आदि से जीवन-रस ग्रहण करती ही रही है।

हिन्दी में राष्ट्रीय भाषा होने के साथ एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा होने की भी पूरी-पूरी क्षमता है। हमें इस क्षमता की पहचान करनी होगी, ताकि हिन्दी तकनीकी प्रगति की दौड़ में आगे रह सके। हमने पहले ज़िक्र किया था कि इस इक्कीसवीं सदी में आगे चलकर कुल दस भाषाएँ ही ऐसी रह जाएँगी, जिनका अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व होगा। हिन्दी उनमें से एक होगी। भाषा के संबंध में जो नए सर्वेक्षण हुए हैं, उनमें पाया गया है कि विश्व में हिन्दी बोलनेवालों की संख्या सर्वाधिक है। अब वह दिन भी दूर नहीं, जब संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्यता मिल

जाएगी, क्योंकि इसके लिए जो 'इन्फ्रास्ट्रक्चर' तैयार करने का ख़र्च था, लगभग 100 करोड़ का, उसमें से आधा पैसा जमा कर दिया गया है। अतः हिन्दी की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका का स्वप्न अब यथार्थ में परिणत होने जा रहा है। वैश्वीकरण के नाम पर जो आर्थिक शिकंजा कसा जा रहा है, उसकी भाषा भी शिथिल पड़ेगी। शायद आनेवाला जो बाज़ार है, उसकी ही वास्तविकता इसके लिए विवश करे।

हमने पहले वैश्वीकरण के एक रूप की चर्चा की थी और उसके ख़तरों के प्रति सचेत किया था। लेकिन हमें यह भी आशा रखनी चाहिए कि शायद वैश्वीकरण का जो दूसरा रूप आए, वह शायद अन्योन्याश्रय का हो, एक-दूसरे पर आश्रित रहनेवाला हो, एक दूसरे को हज़म करनेवाला नहीं।

वैश्वीकरण के कारण भारत एक बड़े बाज़ार के रूप में भी उभरकर सामने आ रहा है। इसलिए विदेशी कंपनियों को भी अब लगने लगा है कि भारत में अगर अपने व्यापार को बढ़ाना है तो इसके लिए हिन्दी भाषा का प्रयोग ज़रूरी है। इसी व्यापारिक समझ के नाते हिन्दी को पढ़ने, समझने और बोलने पर ज़ोर दिया जा रहा है। विश्व के समृद्ध देश और विश्व बैंक भी इस बात को समझने लगे हैं कि भारत इक्कीसवीं सदी में एक बहुत बड़े बाज़ार के रूप में उभरेगा। और इस सदी में भाषाओं तथा साहित्य का भविष्य शायद बाज़ार ही तय करे। वैश्वीकरण एवं भारत को दुनिया के बड़े बाज़ार के रूप में विकसित होने की संभावनाओं को देखते हुए हिन्दी के प्रति विदेशियों का रुझान बढ़ा है। शायद इसी दवाव के चलते हिन्दी विश्व की एक प्रतिष्ठित भाषा के रूप में स्थापित हो। ❑

राजभाषा प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत प्रतिभागी

12-19 सितंबर 2003 के दौरान साहित्य अकादेमी में सफलतापूर्वक 'राजभाषा पर्व' का आयोजन किया गया। निम्नलिखित प्रतिभागी इस दौरान संपन्न प्रतियोगिताओं में भाग लेकर विजयी घोषित हुए। इन्हें निम्नलिखित सूची के अनुसार 500 रुपये (प्रथम), 300 रुपये (द्वितीय) एवं 200 रुपये (तृतीय) की राशियाँ पुरस्कारस्वरूप और प्रमाण पत्र प्रदान किए गए।

निबंध प्रतियोगिता

(अहिन्दी वर्ग)

प्रथम — श्री सुब्रत पॉल
द्वितीय — श्री एम.ए. जोसफ़
तृतीय — श्री के.जी. रामलिंगम

(हिन्दी वर्ग)

प्रथम — श्रीमती शांता ग्रोवर
द्वितीय — श्री हरीश सिंह कंडारी
तृतीय — श्रीमती रेणु प्रूथी

वाद-विवाद प्रतियोगिता

(अहिन्दी वर्ग)

प्रथम — श्री अशोक चौधुरी
द्वितीय — श्री के.जी.रामलिंगम
तृतीय — श्री के. एस. राव

(हिन्दी वर्ग)

प्रथम — श्री श्याम सुंदर कोचर
द्वितीय — श्रीमती शांता ग्रोवर
तृतीय — श्री राजकुमार वर्मा

प्रश्न मंच प्रतियोगिता

प्रथम — श्री सुब्रत पॉल
द्वितीय — श्री श्रीमती शांता ग्रोवर
तृतीय — श्री रजनीश राना

काव्य-पाठ प्रतियोगिता

(अहिन्दी वर्ग)

प्रथम — श्री के. जी. रामलिंगम

(हिन्दी वर्ग)

प्रथम — श्री श्याम सुंदर कोचर
द्वितीय — श्री शांता ग्रोवर
तृतीय — श्रीमती रेणु प्रूथी

श्रुतलेख प्रतियोगिता

प्रथम — श्री कुलदीप चंद्र
द्वितीय — श्री राजेन्द्र कुमार
तृतीय — श्री ताजबर सिंह

प्रस्तुति : निशांत

नीरज चौरसिया

साहित्य अकादेमी पुस्तकालय के कंप्यूटरीकरण पर एक नज़र

भारत सरकार द्वारा स्थापित साहित्य अकादेमी (स्थापना : 12 मार्च 1954 ई.) भारतीय साहित्य के सक्रिय विकास के लिए कार्य करनेवाला राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसा संस्थान है, जिसका उद्देश्य भारतीय भाषाओं में साहित्यिक गतिविधियों को समन्वित तथा पोषित करना है। साहित्यिक गतिविधियों के माध्यम से देश की सांस्कृतिक एकता का उन्नयन करना है। साहित्य अकादेमी पुस्तकालय भारत के प्रमुख बहुभाषिक पुस्तकालयों में से एक है। यहाँ पर अकादेमी द्वारा मान्यता प्राप्त 22 भाषाओं (असमिया, वाङ्ला, मणिपुरी, नेपाली, ओड़िया, गुजराती, कोंकणी, मराठी, सिन्धी, हिन्दी, कश्मीरी, पंजाबी, संस्कृत, उर्दू, कन्नड, मलयाळम, तमिष़, तेलुगु, डोगरी, अंग्रेज़ी, मैथिली, राजस्थानी) भाषाओं में साहित्यिक और संबद्ध पुस्तकें उपलब्ध हैं। यह पुस्तकालय समालोचनात्मक पुस्तकों, अनूदित कृतियों, संदर्भ ग्रंथों, शब्दकोशों आदि के समृद्ध संग्रह के लिए जाना जाता है। यह पुस्तकालय प्रत्येक वर्ष लगभग 3000 से 4000 पुस्तकें तथा कई नई पत्र-पत्रिकाएँ अपने संग्रह में जोड़ता है। स्वाभाविक रूप से यह देखा जा सकता है कि कुल संग्रह लगभग 1 लाख 50 हज़ार पुस्तकों तथा लगभग 160 पत्र-पत्रिकाओं—जिनमें, उपहार स्वरूप भी शामिल है, का है। इनका संग्रह करना तथा उपयोगकर्ता को आवश्यकता के अनुसार समय से उपलब्ध कराना ही पुस्तकालय का मुख्य उद्देश्य है।

इस आलेख का मुख्य पहलू पुस्तकालय का कंप्यूटरीकरण है। कंप्यूटर में सूचना संग्रह की अपार क्षमता होने और अत्यधिक तीव्र गति से सूचना पुनर्प्राप्ति (Information Retrieval) में सक्षम होने के कारण कंप्यूटर की उपयोगिता पुस्तकालय सेवाओं में अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। कंप्यूटर सूचना को नियंत्रित करने की सशक्त विधियाँ प्रदान करता है। चूँकि पुस्तकालयों में लगभग सभी कार्य ऐसे होते हैं, जो कि बार-बार दोहराने पड़ते हैं, जिसमें अत्यधिक मानव श्रम एवं समय व्यर्थ जाता है। अगर साहित्य अकादेमी पुस्तकालय पर नज़र डालें तो यहाँ उपर्युक्त सभी भाषाओं का संग्रह है, परंतु हिन्दी तथा अंग्रेज़ी का संग्रह काफ़ी अधिक है तथा इनके उपयोगकर्ता भी अपेक्षया अधिक हैं। वैसे तो यहाँ लगभग सभी भाषाओं के उपयोगकर्ता हैं।

हिन्दी तथा अंग्रेज़ी भाषाओं की पुस्तकों का अधिक उपयोग होने के कारण इन्हीं दो भाषाओं के कंप्यूटरीकरण पर सबसे पहले ध्यान दिया गया, जो कि पूरा हो चुका है तथा हिन्दी एवं अंग्रेज़ी database को बड़ी आसानी से OPAC ओपेक (Online Public Access Catalogue) द्वारा खोजा जा सकता है। अन्य भाषाओं का कंप्यूटरीकरण निकट भविष्य में संभव होगा।

पुस्तकालय कंप्यूटरीकरण के सभी क्रियाकलापों के लिए Libsys (लिबसिस) सॉफ़्टवेयर का उपयोग कर रहा है। यह एक Multi-user software है, जिसे एक ही समय में एक से अधिक लोग आसानी से उपयोग कर सकते हैं।

अकादेमी का पुस्तकालय अभी पूर्ण रूप से कंप्यूटरीकृत नहीं हो पाया है, कई स्तरों पर कार्य प्राथमिक तथा प्रायोगिक स्तर पर निरंतर किया जा रहा है। पुस्तकालय में निम्न सेवाओं हेतु कंप्यूटर का प्रयोग प्रमुखता से किया जा रहा है—

यंत्रीकृत अधिग्रहण (Computerized Procurement)

कंप्यूटर द्वारा अधिग्रहण की समस्या अत्यधिक सरल हो गई है। अधिग्रहण के सभी कार्य, जैसे—सुआवित पुस्तकों की सूची बनाना, उनकी उपलब्धता ज्ञात करना, क्रय आदेश भेजना, पुस्तकों को अधिग्रहण क्रमांक देना तथा मुद्रित

सूची तैयार करना, उपलब्ध पुस्तकों की दोबारा ख़रीद को रोकना आदि कंप्यूटर से संभव हैं।

यंत्रीकृत सूचीकरण (Computerized Cataloguing)

कंप्यूटर की सहायता से किसी भी पुस्तक संबंधी पूर्ण विवरण (Bibliographical details) देकर उसे सुरक्षित रखा जा सकता है। तथा आवश्यकता पड़ने पर उसे किसी भी रूप में मुद्रित भी किया जा सकता है। कंप्यूटर की सहायता से सभी सूचियाँ जैसे लेखक सूची, शीर्षक सूची, विषय सूची आदि की अनुक्रमणिका (Indexing) स्वतः ही हो जाती है। जिससे सूचियों को वर्णकम में करने का दुरूह कार्य समाप्त हो जाता है। इस प्रकार किसी भी उपयोगकर्ता को किसी भी विषय, किसी भी लेखक आदि पर उपलब्ध पुस्तकों की सूची आसानी से दी जा सकती है।

कंप्यूटरीकृत संदर्भ ग्रंथ एवं सेवाएँ (Computerized Reference Books & Services)

कंप्यूटर तथा अन्य सूचना तकनीकों के मेल से ऐसे माध्यमों का विकास संभव हुआ है कि कई खंडों में उपलब्ध सूचना ग्रंथ जैसे विश्वकोश, शब्दकोश, अनुक्रमणिकाएँ, सारांश सेवाएँ आदि CD-ROM में तथा Online उपलब्ध किए जा रहे हैं। इनके रख-रखाव का ख़र्च नहीं के बराबर होता है और सूचना पुनर्प्राप्ति क्षणों में कंप्यूटर द्वारा हो जाती है।

साहित्य अकादेमी पुस्तकालय में Books-in-Print की CD-ROM उपलब्ध है, इसकी सहायता से अंग्रेज़ी में प्रकाशित हो रही पुस्तकों की सूचना आसानी से प्राप्त की जा सकती है तथा आवश्यकतानुसार इसे मुद्रित रूप में भी पाया जा सकता है। यह CD-ROM त्रैमासिक रूप से अद्यतन किया जाता है। अकादेमी पुस्तकालय को इस ओर अभी काफ़ी ध्यान देने की ज़रूरत है, ताकि पुस्तकों के संग्रह के साथ-साथ ऑनलाइन तथा इलेक्ट्रॉनिक स्रोतों (जैसे—CD-ROMs आदि) के संग्रह को भी बढ़ाया जा सके।

यंत्रीकृत आदान-प्रदान कार्य (Computerized Circulation Work)

अकादेमी के आदान-प्रदान अनुभाग में भी कंप्यूटरीकरण चल रहा है। पुस्तकालय अपने लगभग 7500 सदस्यों का पूरा विवरण कंप्यूटरीकृत करके डाटाबेस तैयार किया है। 'सिंगल क्लिक' पर किसी भी सदस्य के बारे में पूरी सूचना दी जा सकती है। अब कंप्यूटर द्वारा पुस्तकालय के सदस्यों का परिचय-पत्र भी तैयार किया जा सकता है, जिस पर 'बार कोड' की उपलब्धता पहले से ही रहेगी। इसके द्वारा हिन्दी और अंग्रेज़ी पुस्तकों का कंप्यूटर द्वारा आदान-प्रदान संभव है। इसके लिए सभी पुस्तकों तथा पुस्तकालय सदस्यों के लिए Barcoding (बारकोडिंग) का कार्य लगभग पूरा होने जा रहा है। Barcode की उपलब्धता के कारण Bar Code Scanner/Barcode Reader की सहायता से पुस्तकों का आदान-प्रदान अविलंब संभव हो पाएगा।

कंप्यूटर की सहायता से यह पता लगाना आसानी से संभव हुआ है कि किस सदस्य के पास कौन-कौन-सी पुस्तकें हैं तथा उनको वापस करने की क्या तारीख़ है।

भविष्य में पुस्तकालय द्वारा 'सेक बारकोड रीडर' लगाने का भी विचार है। इस तकनीक के उपयोग से केवल वही पुस्तकें बाहर ले जाई जा सकती हैं, जिन्हें पुस्तकें सदस्य को ले जाने की अनुमति प्रदान की गई है अन्यथा साइरन बजने से अवांछित रूप से ले जा रही पुस्तक की सूचना मिल जाएगी, इससे पुस्तकों की चोरी को रोका जा सकता है।

यंत्रीकृत खोज सेवा [OPAC (Online Public Access Catalogue)]

अकादेमी के पुस्तकालय में OPAC (Online Public Access Catalogue) ओपेक सुविधा उपलब्ध है, जिसकी सहायता से उपयोगकर्ता आसानी से स्वयं ही कंप्यूटर द्वारा खोजकर अपनी आवश्यक पुस्तक, आलेख (Article database) या पत्र-पत्रिकाओं की उपलब्धता का पता कर सकता है तथा यह भी पता कर सकता है कि पुस्तक की क्या स्थिति है (यानी वह निर्गत है या किसी तकनीकी प्रक्रिया में है)। साथ ही यह पता कर सकता है कि पुस्तकालय में कौन-कौन-सी नई पुस्तकें आई हैं। अगर उपयोगकर्ता को किसी पुस्तक के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी है तो OPAC की सहायता से पूरी जानकारी एक Catalogue के रूप में मिल जाती है। यहाँ तक कि पुस्तकालय, संबंधित सूची का मुद्रित रूप भी निर्धारित राशि को भुगतान करने पर प्रदान करता है, जो कि शोधकर्ता के लिए अत्यधिक

सहयोगी होता है। अकादेमी का पुस्तकालय एक Web OPAC भी अपनी वेबसाइट (http://www.sahitya-akademi.org) पर आरंभ करने जा रहा है, जिसका वेबपेज http://192.168.1.100/Issearch.html है। इसकी सहायता से कोई भी उपयोगकर्ता आसानी से किसी भी स्थान पर, जहाँ इंटरनेट की उपलब्धता हो, वहाँ बैठकर साहित्य अकादेमी पुस्तकालय में हिन्दी तथा अंग्रेज़ी भाषा में उपलब्ध पुस्तकों की सूची तथा उनका पूरा विवरण देख सकता है या डाउनलोड कर सकता है तथा बाद में पुस्तकालय आकर आवश्यक पुस्तक प्राप्त कर सकता है। अभी यह कार्य प्रायोगिक स्तर पर चल रहा है, जो कि जल्दी ही पूरा करने का प्रयास है। इससे पुस्तकालय के उपयोग को बढ़ावा मिलेगा।

डेलनेट (DELNET) Database खोज सेवा

आज प्रकाशन का संसार इतना विशाल तथा व्यापक हो गया है कि कोई भी पुस्तकालय कितना भी विशाल, समृद्ध तथा संसाधनयुक्त क्यों न हो, सभी प्रलेखों को उपलब्ध कराने का दावा अपने संग्रह से नहीं कर सकता है। कई बार पुस्तकालय अपने उपयोगकर्ता की आवश्यकताओं को पूग करने में असफल होता है। इसके लिए राष्ट्रीय तथा अंनर्राष्ट्रीय स्तर पर कई नेटवर्क स्थापित किए गए हैं। साहित्य अकादेमी पुस्तकालय ऐसी ही एक संस्था DELNET (Developing Library Network) का सदस्य है।

डेलनेट (DELNET) दिल्ली तथा आस-पास के क्षेत्रों के पुस्तकालयों में उपलब्ध पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं तथा आलेख विवरण की एक संपूर्ण सूची (Union Catalogue) कंप्यूटर पर ऑनलाइन प्रदान करता है। अकादेमी के पुस्तकालय में भी इस सुविधा का लाभ पुस्तकालय कर्मचारी की सहायता से उठाया जा सकता है। इसके लिए Delnet की वेबसाइट http://www.delnet.nic.in पर लॉगइन करके Online Searching की जा सकती है। इसकी सहायता से यह पता किया जा सकता है कि कोई भी पाठ्य सामग्री दिल्ली या इसके आस-पास के क्षेत्रों में स्थित किस पुस्तकालय में उपलब्ध है। इस प्रकार उपयोगकर्ता स्वयं उस पुस्तकालय में जाकर आवश्यक पाठ्य सामग्री को प्राप्त कर सकता है।

पत्र-पत्रिका अनुभाग (Periodical Section)

पत्र-पत्रिका अनुभाग किसी भी पुस्तकालय का एक बहुत महत्त्वपूर्ण विभाग होता है। साहित्य अकादेमी पुस्तकालय में लगभग 160 दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। ये पत्र-पत्रिकाएँ लगभग सभी भारतीय भाषाओं में होती हैं, जिन्हें या तो पुस्तकालय ख़रीदता है या उपहारस्वरूप या फिर विनिमय के आधार पर प्राप्त करता है। पुस्तकालय में इनके रख-रखाव के लिए भी कंप्यूटर का उपयोग किया जाता है, जिससे इनकी उपलब्धता आदि का पता लगाया जा सकता है तथा अलग-अलग विषयों तथा भाषा के आधार पर सूची तैयार की जा सकती है।

पुस्तकालय साहित्य के क्षेत्र में प्रकाशित होनेवाले आलेखों का एक database भी बना रहा है, जिसमें कई हज़ार आलेखों में से आसानी से आवश्यक आलेख के बारे में सूचना (Bibliographical details) प्राप्त की जा सकती है।

कोई भी पुस्तकालय एक सेवा केन्द्र है, जिसका मूल कार्य अधिग्रहण, प्रक्रियात्मक कार्य, व्यवस्थापन, संग्रह और प्रलेख या सूचना पुनर्प्राप्ति (Information Retrieval) करके उपयोगकर्ता की सूचना-आवश्यकता को पूरा करता है। अकादेमी का पुस्तकालय भी एक ऐसा ही पुस्तकालय है और इसके कंप्यूटरीकरण से जानकारियाँ प्राप्त करना एवं इसका उपयोग और भी सहज हुआ है। किन्तु अभी भी बहुत से क्षेत्र ऐसे हैं, जिन पर पुस्तकालय को ध्यान देना ज़रूरी है, तभी यह पुस्तकालय देश के बेहतरीन कंप्यूटरीकृत पुस्तकालयों में एक हो पाएगा। ❑

दुनिया भर में शायद ही ऐसी विकसित साहित्य भाषा हो, जो सरलता में और अभिव्यक्ति की क्षमता में हिन्दी की बराबरी कर सके।

—फ़ादर कामिल बुल्के

अशोक कुमार चौधरी

प्रो. गोपीचंद नारंग का कृतित्व

भारत में उर्दू के जाने-माने विद्वानों में से एक प्रोफ़ेसर गोपीचंद नारंग को उनके गहन शोध-अध्ययन के कारण आलोचकों एवं उर्दूभाषाविदों के बीच प्रमुख स्थान प्राप्त है। भारत में साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में शैली तथा संरचनात्मकवाद को क्रियान्वित करनेवालों में वह प्रथम हैं। भारत तथा विदेशों में कई उच्च शिक्षा संस्थानों से शिक्षाप्राप्त तथा अध्यापन का अनुभव हासिल कर चुके प्रो. नारंग राजनीतिक लाभ के लिए उर्दू भाषा का इस्तेमाल करनेवालों के सख़्त विरोधी हैं। उन्होंने अक्सर अपने पाकिस्तानी मित्रों से कहा है कि "वे किसी भाषा को सियासती रंग में न रँगें। भारत की राष्ट्रीय भाषाओं में से एक उर्दू भी है, जो कि पाकिस्तान में किसी भी क्षेत्र की अपनी स्वाभाविक भाषा नहीं है, चाहे वो कराची से लाहौर हो या पेशावर से क्वेटा तक का इलाक़ा।" वे उर्दू के प्रोफ़ेसर तथा एक राष्ट्रीय फ़ेलो होने के साथ-साथ बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक एवं साहित्यिक आलोचक, भाषाकार, अकादमीशियन तथा सांस्कृतिक प्रबंधक भी हैं।

उन्हें एक विद्वान तथा आलोचक के रूप में राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त है। हाल ही में उन्हें भारत के दूसरे सबसे प्रतिष्ठित नागरिक सम्मान 'पद्म विभूषण' से नवाज़ा गया है। सम्मान प्राप्त करते हुए उन्होंने कहा, "कला एवं साहित्य का क्षेत्र सदैव समर्पण एवं वचनबद्धता की माँग करता है। मैं शब्दसाधना को तपस्या का ही एक हिस्सा मानता हूँ। वास्तविक सम्मान तो पाठकों की प्रतिक्रियाएँ हैं। फिर भी किसी साहित्यिक संस्था अथवा सरकार की ओर से यदि कोई सम्मान मिलता है तो यह एक सुखद अनुभूति है। स्वयं राष्ट्रपति जी द्वारा पद्म विभूषण से नवाज़ा जाना वाक़ई एक राष्ट्रीय सम्मानजनक बात है तथा आनंददायक अनुभव है।"

इसके अलावा, प्रो. नारंग को वर्ष 2003 के लिए बापू रेड्डी जातीय साहिती पुरस्कारम् भी प्रदान किया गया। यह एक राष्ट्रीय सम्मान है, जो कि डॉ. जे. बापू रेड्डी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक फ़ाउंडेशन ट्रस्ट की ओर से प्रदान किया जाता है। पुरस्कार की अनुशंसा में कहा गया है कि "उर्दू के विद्वान एवं प्रतिष्ठित साहित्यिक आलोचक प्रो. गोपीचंद नारंग को यह पुरस्कार आधुनिक भारत के साहित्य तथा राष्ट्रीय एकता एवं हमारी मान्यताओं को प्रचारित करने में किए गए उनके योगदान की प्रशंसा के रूप में दिया जा रहा है।" प्रो. नारंग को सातवाँ 'आलमी फ़रोग़-ए-उर्दू अदब अवार्ड' प्रदान किया गया। मजलिस फ़रोग़-ए-उर्दू अदब द्वारा 1996 में शुरू किए गए इस पुरस्कार में डेढ़ लाख रुपए तथा एक स्वर्ण-पदक तथा प्रशस्ति-पत्र प्रदान किए जाते हैं। यह पुरस्कार उन्हें क़तर की राजधानी दोहा में अक्तूबर 2002 में एक विशेष समारोह में प्रदान किया गया था। प्रो. नारंग ने इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए नई दिल्ली में कहा था, "उर्दू दक्षिण एशिया की शानदार सांस्कृतिक शैली है। कुछ समय से यह भाषा भारत पाकिस्तान, बाङ्लादेश एवं खाड़ी देशों के लोगों को रचनात्मक तौर पर जोड़ने का काम कर रही है। दोहा की मजलिस फ़रोग़-ए-उर्दू, उर्दू अदब को बढ़ावा देने में अथक कार्य कर रही है। धन्यवाद के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैं इस अदब का आशिक़ हूँ और अमन और भाईचारे के इस अदब के संदेश को फैलाने के उद्देश्य के प्रति कटिबद्ध हूँ।"

प्रो. नारंग को उपमहाद्वीप का सबसे विशिष्ट उर्दू साहित्यिक आलोचक कहा जा सकता है। उनकी कृतियों में कई पहलू सामने आते हैं—चाहे वह उर्दू कविता पर भारतीय दर्शन एवं संस्कृति का प्रभाव हो या उर्दू में भारतीय लोककथाएँ या आधुनिक उर्दू कविता एवं कथा साहित्य। उनकी एक और ख़ासियत उर्दू साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में शैलीमयी अंदाज़ और संरचनात्मक सोच को इस्तेमाल करना है, जिसके द्वारा उन्होंने उर्दू साहित्य को एक नई अंतर्दृष्टि तथा परंपरागत तथा आधुनिक उर्दू साहित्य को एक नई जागरूकता प्रदान की है। मोहिउद्दीन ज़ोर ने 1930 में पेरिस में प्रकाशित

अपनी अंग्रेज़ी किताब *हिन्दुस्तानी फ़ोनेटिक्स* में पहली बार उर्दू ध्वनि का विश्लेषण किया था। इस बारे में उनकी उर्दू किताब *हिन्दुस्तानी लिसानियत* 1993 में प्रकाशित हुई थी। मसूद हुसैन ख़ान ने अंग्रेज़ी में इस बारे में एक और निबंध पुस्तक *फ़ॉनेटिक्स एवं फ़ोनोलॉजिकल स्टडी ऑफ़ वर्ड्स इन* उर्दू प्रकाशित की थी। इन दोनों पुस्तकों के अलावा कई और विद्वानों एवं लेखकों द्वारा कई महत्त्वपूर्ण लेख उर्दू भाषा एवं आम बोलियों के विभिन्न पहलुओं पर लिखे गए हैं। पर *दिल्ली उर्दू की करखंदरी बोली* के लेखक प्रो. नारंग ने शैलीवाद पर लेख लिखकर साहित्य आलोचना के क्षेत्र में एक नई विचारधारा को जन्म दिया है।

प्रो. नारंग ने पिछले पाँच दशकों में उर्दू, हिन्दी एवं अंग्रेज़ी पर 50 शोध पुस्तकें लिखी हैं, जो भारत तथा विदेशों में प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने भारतीय तथा ब्रिटेन, अमरीका, नार्वे तथा चेकोस्लोवाकिया की पत्रिकाओं के लिए मौलिक शोध लेख लिखे हैं। उनकी ज़्यादातर पुस्तकों का कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और उनकी कई किताबों पर डॉक्टरेट की जा रही है। ये पुस्तकें दो मुख्य वर्गों में बाँटी जा सकती हैं—भाषा तथा भाषाविज्ञान एवं आलोचना एवं शोध। भाषा विज्ञान में उनकी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें *दिल्ली उर्दू की करखंदरी बोली* तथा *उर्दू की तालीम के लिसानियाती पहलू* दोनों 1961 में प्रकाशित हुई थीं और शुद्ध उर्दू लेखन पर भी उनकी पुस्तकें विशिष्ट हैं। उनकी *हिन्दुस्तानी किस्सों से माख़ूज़ उर्दू मसनवियाँ* 1962 में प्रकाशित एक किताब आलोचना पर आधारित है, जिसमें भारतीय कथासार और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत में रँगे हमारे साहित्य पर सामाजिक-सांस्कृतिक पहलू से विचार किया गया है। इस पुस्तक के लिए उन्हें वर्ष के बेहतरीन शोध कार्य के लिए उत्तर प्रदेश उर्दू अकादेमी द्वारा 'ग़ालिब पुरस्कार' से नवाज़ा गया था।

संरचनात्मक विश्लेषण के द्वारा प्रो. नारंग ने *सानेहा-ए-कर्बला वतौर ए-शेरी इश्तियार* (1986) में आज की सामाजिक-राजनीतिक चिन्ताओं को व्यक्त करने के लिए कर्बला के मूल भाव के प्रतीकात्मक इस्तेमाल के काव्यात्मक रुझान पर रोशनी डाली है। उनकी *साख़्तियात, पस-साख़्तियात और मशरिक़ी शेरियात* (1994) भारत में उर्दू आलोचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान मानी जाती है। यह साहित्य तथा काव्य का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में लेखों की विविधता, भाँति-भाँति के साहित्यिक नमूनों तथा शिद्दत के साथ की गई बहस के कारण इसे 1995 का साहित्य अकादेमी पुरस्कार दिया गया।

प्रो. नारंग की किताब *अमीर ख़ुसरो के हिन्दवी कलाम* को 1987 में शिकागो की अमीर खुसरो सोसाइटी द्वारा प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक में खुसरो की हिन्दवी की अब तक अनजान पांडुलिपि के साथ बर्लिन एम.एस.एस. के स्प्रेंगर कलेक्शन से प्राप्त ख़ुसरो की मूल पांडुलिपि प्रकाशित है। इस पुस्तक का 1991 में पहला एवं दूसरा संस्करण और फिर 1992 में तीसरा संस्करण क्रमशः लाहौर और दिल्ली से प्रकाशित हो चुके हैं। *अदबी तनक़ीद* और *उस्लूबियात* (1989) नामक उनकी आलोचना कृति को भी काफ़ी प्रशंसा हासिल हुई है।

उर्दू भाषा एवं साहित्य : आलोचनात्मक दृष्टिकोण (1991) शास्त्रीय तथा सामयिक दोनों तरह के उर्दू लिटरेचर पर प्रो. नारंग के विशेष लेखों का संग्रह है। इन लेखों में उपमहाद्वीप के लोगों की संयुक्त सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में तथा हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के एक सबसे अधिक लोकप्रिय साधन के रूप में उर्दू के विकास की अलग-अलग अवस्थाओं के बारे में बताते हुए विस्तृत चर्चा की गई है।

उनके लेखों में ग़ज़ल, मसनवी, सूफ़ीवाद, ग़ालिब, इक़बाल, फ़ैज़, फ़िराक़ गोरखपुरी से लेकर उर्दू कथा साहित्य के बारे में भी काफ़ी कुछ कहा गया है और राजिन्दर सिंह बेदी की लाक्षणिक और मिथकीय क्षमताओं की जड़ों पर एक मूल लेख भी शामिल किया गया है। इसके साथ ही, इसमें तीन भाषाओंवाले फ़ार्मूले में उर्दू के स्थान को लेकर उसका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा विभिन्न संस्कृतिवाले समाजों में लेखन शैली के इस्तेमाल और विकास के बारे में बात की गई है एवं *सेमिटिक-ईरानी शुद्ध लेखन मॉडल* को स्वीकारने का तर्क दिया गया है, ताकि एक स्वदेशी भारत-आर्य-भाषा को निर्मित किया जा सके।

एक योग्य संपादक एवं संकलनकर्त्ता होने के नाते प्रो. नारंग ने कई राष्ट्रीय संस्थाओं के लिए अनेक पुस्तकें संपादित एवं संकलित की हैं। उन्होंने इंडियन काउंसिल फ़ॉर कल्चरल रिलेशंस के लिए 1981 में आधुनिक उर्दू कविता-संग्रह का संपादन किया। वे 1997 में भारतीय

स्वतंत्रता के स्वर्ण जयंती महोत्सव के उपलक्ष में नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित *मास्टरपीसेज़ ऑफ़ इंडियन लिटरेचर* (भारतीय साहित्य के कीर्तिमान) के उर्दू भाग के संपादक थे। उन्होंने नेशनल बुक ट्रस्ट की डॉ. ज़ाकिर हुसैन सीरीज़ में *पुराणों की कहानियाँ* भी लिखी हैं, जिसके कारण उन्हें 1977 में एन.सी.ई.आर.टी. का राष्ट्रीय पुरस्कार हासिल हुआ। उन्होंने साहित्य अकादेमी के लिए उर्दू कथा-साहित्य माला में चुनिंदा कहानियों के तीन खंड भी संपादित किए हैं। प्रो. नारंग ने *राजिन्दर सिंह बेदी : चुनिन्दा कहानियाँ* (1989) नामक संग्रह में उन कहानियों को लेने का पूरा प्रयास किया है, जिनसे दो शैलियों में बेदी की लेखन क्षमता पूरी तरह से उजागर होती है। बेदी अपने स्त्री पात्रों का रेखांकन अनोखे तरीक़े से करते हुए उन्हें बुद्ध के समान स्थान देते हैं क्षमा और दया की तरह। उनकी कहानियों में ऐसे तत्त्व उभरकर आते हैं, जिनसे वे भारतीय परंपरा की मुख्यधारा से जुड़ जाती हैं। इन कहानियों में बेदी के एक लेखक के रूप में हर पहलू को विस्तार से छूने की कोशिश की गई है। प्रो. नारंग राजिन्दर सिंह बेदी के बारे में बात करते हुए छोटी कहानियों के लेखन में शैलीगत समस्याओं को परिभाषित करते हैं। उनका कहना है कि उर्दू कथा लेखन की तीन शैलियाँ हैं, जिन्हें प्रेमचंद, मंटो और कृष्णचंदर द्वारा अपनाया गया था—ये शैलियाँ आज भी जीवित हैं।

कृष्ण चंदर : प्रतिनिधि कहानियाँ (1990), जो कि इस माला की दूसरी पुस्तक थी, में प्रो. नारंग ने लेखक की छह कहानियों को लिया है, जो कि प्रेमचंद के बाद उर्दू की सर्वोत्तम कहानियों में गिनी जाती हैं। इनमें लेखक आदमी का आदमी द्वारा शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाता है और भाईचारे तथा मेलमिलाप के लिए पूरे उन्माद के साथ गुहार लगाता है। इस माला की तीसरी पुस्तक *बलवंत सिंह : प्रतिनिधि कहानियाँ* (1996) में लेखक की 18 कहानियाँ ली गई हैं। इसमें बलवंत को गुमनामी से निकालने की पूरी कोशिश की गई है और पाठकों के लिए लेखक की बेहतरीन कहानियाँ पेश की गई हैं। प्रो. नारंग ने 'बलवंत सिंह की कहानी-कला' पर अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिका के बाद कहानीकार का पूरा जीवन वृत्त भी प्रस्तुत किया है।

इसके अलावा यूनेस्को प्रतिनिधि साहित्य संग्रह : भारतीय माला के लिए उर्दू कहानियों का संपादन भी प्रो. नारंग ने किया, जिसे साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशन के लिए स्वीकृत किया जा चुका है। वे अकादेमी के प्रतिष्ठित प्रकाशन *भारतीय साहित्य विश्वकोश* (6 खंड) के उर्दू संपादक तथा सलाहकार थे। इस विश्वकोश में साहित्यिक धाराओं, प्रवृत्तियों तथा स्थापित लेखकों तथा 25 भारतीय भाषाओं की महत्त्वपूर्ण किताबों का मूल्यांकन किया गया है।

प्रो. नारंग ने मैरी सीडलिंगर के साथ *ए बिब्लियोग्राफ़ी ऑफ़ उर्दू शॉर्ट स्टोरीज़ इन इंग्लिश ट्रांसलेशन* का संकलन किया, जिसमें सीडलिंगर द्वारा कुछ सामग्री जोड़ी गई है। प्रो. नारंग ने विस्कांसिन विश्वविद्यालय तथा मिनेसोटा विश्वविद्यालय के लिए अंग्रेज़ी माध्यम से उर्दू सीखने हेतु सामग्री तैयार की है। उन्होंने उर्दू भाषा के प्रसार के लिए राष्ट्रीय काउंसिल के लिए हिंदी में एक और किताब लिखी, जिसका शीर्षक है *उर्दू कैसे लिखें* (2001)।

प्रो. नारंग की असाध्य विद्वत्ता एवं सशक्त लेखकीय प्रस्तुति क़द्रदानों के लिए एक यादगार पठन उपलब्ध कराती है। अलीगढ़ से प्रकाशित एक मुख्य उर्दू पत्रिका *अल्फ़ाज़* ने 1987 में उनके सम्मान में एक विशेषांक निकाला था। मुक्त ग़ज़ल लिखनेवाले आधुनिक कवि डॉ. मनाजिर आशिक़ ने प्रो. नारंग पर एक पुस्तक *गोपीचंद नारंग और अदबी नज़रिया साज़ी* (1995) शीर्षक से प्रकाशित की है और 60 के दशक में आधुनिकता के विचार को स्वीकारने के लिए जाने जानेवाले शहरयार ने भी उन पर एक पुस्तक संपादित की है, जिसका शीर्षक है *गोपीचंद नारंग शख़्सीयत और अदबी ख़िदमत* (1995)। बिहार विश्वविद्यालय, मुज़फ़्फ़रपुर ने 1962 में हामिद अली ख़ान को *गोपीचंद नारंग : जीवन एवं कृतित्व* विषय पर लिखित उनके शोध प्रबंध के लिए पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की एवं 1995 में उसे प्रकाशित भी किया।

एक प्रतिष्ठित लेखक एवं भाषाकार होने के नाते प्रो. नारंग ने कई लेख लिखे हैं और कई भारतीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सेमिनारों, कांफ्रेंस एवं भाषा तथा साहित्य कार्यशालाओं में भाग लिया है। इनमें से कुछ हैं : अगस्त 1967 में 27वीं अंतर्राष्ट्रीय ओरिएंटलिस्ट्स कांग्रेस, मिशिगन विश्वविद्यालय में भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में; नार्वे सरकार के निमंत्रण पर वे 'राइटर्स यूनियन' तथा कई अन्य साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं को संबोधित करने के लिए अगस्त 1981 में ओस्लो गए; 1982 में कैलीफोर्निया, अरिज़ोना,

वाइकांसिन, शिकागो, मिनिसोटा, कार्नेल, फ़िलाडेल्फ़िया, टोरंटो एवं लंदन विश्वविद्यालयों में भाषण दिए; मास्को में परमाणु निशस्त्रीकरण पर अंतर्राष्ट्रीय मंच में हिस्सा लिया, और मध्य एशिया का दौरा किया तथा ताशकंद, बुख़ारा एवं समरकंद में 1986 में लेक्चर्स दिए, अप्रैल 1997 में वे वाशिंगटन डी.सी. में एशियन लिटरेरी पर्सपेक्टिव कांफ्रेंस में *डेलीगेट* थे।

दुर्लभ बौद्धिक क्षमतावाले प्रो. नारंग का जन्म पहली जनवरी 1931 को बलूचिस्तान के एक छोटे से गाँव दुक्की में हुआ था। यह इलाक़ा अब पाकिस्तान में है। 1946 में भारत आ गए प्रो. नारंग ने 1954 में फ़ारसी में ऑनर्स के बाद उर्दू में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की तथा साथ ही भाषा-विज्ञान में एक डिप्लोमा भी हासिल किया। प्रो. नारंग को दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा 1958 में पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई। उनकी शानदार शैक्षिक सफलताओं को देखते हुए उन्हें उसी साल सेंट स्टीफ़न कॉलेज, दिल्ली में अध्यापन के कार्य की पेशकश की गई। कुछ समय कॉलेज में रहने के बाद उन्होंने 1961 में दिल्ली विश्वविद्यालय में बतौर 'रीडर' कार्य शुरू किया। वे अमेरिका के दो विश्वविद्यालयों वांइकांसिन तथा मिनिसोटा (1963-65) के लिए उर्दू भाषा एवं साहित्य पढ़ाने के लिए निमंत्रित प्रोफ़ेसर भी रहे। 1964 में उन्होंने अपने अमेरिका प्रवास के दौरान इंडियन यूनिवर्सिटी से एक्वास्टिक फ़ोनेटिक्स तथा ट्रांसफ़ॉर्मेशनल ग्रामर पर पोस्ट-डॉक्टरल कोर्स पूरे किए। उन्होंने 1986 तक जामिया मिल्लिया इस्लामिया में उर्दू प्रोफ़ेसर के रूप में कार्य किया। प्रो. नारंग ने जुलाई 1986 में उर्दू प्रोफ़ेसर के रूप में फिर से दिल्ली विश्वविद्यालय में कार्य शुरू किया और 1995 में सेवानिवृत्त हुए। इसके अलावा वे अमेरिका में मिनियापोलिस में मिनिसोटा विश्वविद्यालय के साउथ-एशिया इंस्टीट्यूट में 1968-70 के दौरान दो बार आमंत्रित प्रोफ़ेसर रहे हैं और 1997 में नार्वे-यूनिवर्सिटी, ओसलो में पूर्वी यूरोपीय तथा पूर्वी अध्ययन में 'फ़ॉल सेमेस्टर' के लिए भी आमंत्रित प्रोफ़ेसर रहे हैं।

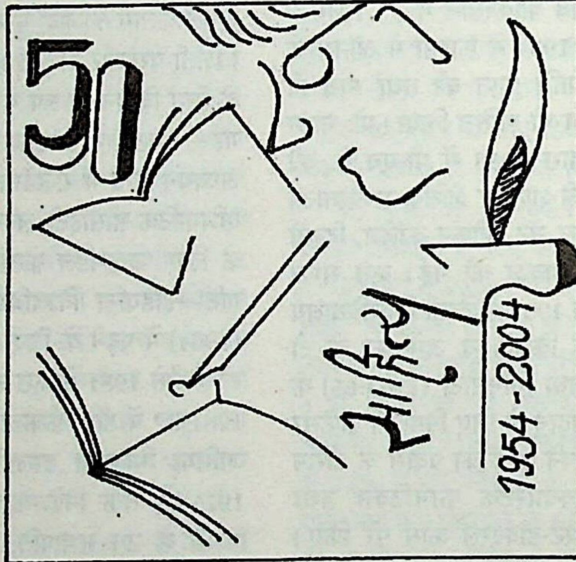
प्रो. नारंग को कई पुरस्कारों और सम्मानों से नवाज़ा जा चुका है। इनमें प्रमुख हैं : 1990 में पद्मश्री, पाकिस्तान के राष्ट्रपति द्वारा विशेष स्वर्ण पदक, जो कि 1977 में उन्हें इक़बाल की शायरी पर उनके कृतित्व के लिए दिया गया था; देश-विदेश में उनकी 15 से भी ज़्यादा किताबों द्वारा किए गए उनके योगदान की सराहना के रूप में 1979 में उन्हें 'राष्ट्रीय शैक्षिक काउंसिल अवार्ड' दिया गया; 1985 में जीवन भर के योगदान के लिए ग़ालिब संस्थान, नई दिल्ली द्वारा दिया गया 'ग़ालिब सम्मान'; उर्दू-हिन्दी साहित्य कमेटी 1984, उर्दू भाषा एवं साहित्य पुरस्कार-टोरंटो 1987। 1993 में साहित्यिक विद्वत्ता तथा आलोचना के लिए 'उर्दू अकादेमी पुरस्कार दिल्ली, 1994 में राजीव गाँधी फ़ाउंडेशन, कानपुर शाखा द्वारा 'धर्मनिरपेक्षता के लिए शानदार कार्य करने के लिए राजीव गाँधी पुरस्कार; 1994 में। उत्तर प्रदेश उर्दू अकादेमी द्वारा साहित्य सेवा के लिए दिया जानेवाला 'मौलाना अबुल कलाम आजाद' पुरस्कार, *मयकश* अवार्ड तथा 'ख़ालसा त्रिशती पुरस्कार दोनों 2000 में; अपनी शैक्षिक विशेषताओं के लिए विद्वान के रूप में उन्हें कई फ़ैलोशिप भी प्रदान की गईं—'रॉकफ़ैलर फ़ाउंडेशन फ़ैलोशिप', इटली, बेलाजियो अध्ययन केन्द्र में रेज़िडेंसी के लिए (1997); 'पोलो', रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन (1963-72); ब्रिटेन में शोधकार्य के लिए 'राष्ट्रमंडल फ़ेलोशिप' (1963); 'फोर्ड फ़ाउंडेशन ग्रांट'—इंडियाना विश्वविद्यालय में लिंग्विस्टिक इंस्टीट्यूट (1964) में पढ़ने के लिए। वे कई महत्त्वपूर्ण ओहदों पर भी रहे हैं जैसे 1981 में कुछ समय के लिए कार्यकारी कुलपति; 1981-82 में डीन, फ़ैकल्टी ह्यूमैनिटीज़ तथा भाषा के; एवं जामिया मिल्लिया इस्लामिया में उर्दू पत्राचार कोर्स के 1975-85 तक निदेशक, 1996-99 तक उर्दू अकादमी, दिल्ली के उप सभापति, साहित्य अकादेमी के उपाध्यक्ष, राष्ट्रीय वर्णमाला अकादेमी नई दिल्ली (1988-2002) एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय की उर्दू भाषा के प्रसार के लिए राष्ट्रीय काउंसिल के उपप्रधान, वर्तमान में प्रो. नारंग 2003 से साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष हैं। इसके अलावा वे कई भारतीय तथा विदेशी साहित्यिक एवं शैक्षिक संस्थाओं में विभिन्न पदों पर जुड़े हैं और उर्दू साहित्य तथा भाषा के क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किए जा रहे क्रियाकलापों से संबद्ध हैं। उनके जीवन के उद्देश्यों में से एक यह भी है कि भारत के लोगों को यह विश्वास दिलाया जाए कि उर्दू न केवल संगठित भारतीय संस्कृति का सबसे प्यारा अंग है, बल्कि इस देश के लोगों में एकजुटता बनाने का सबसे महत्त्वपूर्ण ज़रिया है और शायद राष्ट्रीय एकता का सबसे मज़बूत संबल।

❑

रेणु सचदेवा

किताबें हमारी साथी

आज के मशीनी युग में क़िताबों को एक सच्चा दोस्त कहा जा सकता है, क्योंकि हमारे एकांत में एक नई दुनिया लेकर ये किताबें ही हमं तक आती हैं और हमारी दुनिया का हिस्सा बना जाती हैं। ये हमें थकान, ऊब और हताशा से मुक्त करती हैं। किताबें हमें मार्गदर्शन से लेकर आध्यात्मिक दर्शन तक का मार्ग दिखाती हैं। आज ज़िन्दगी छोटी है और पढ़नेवाली किताबें ज़्यादा हैं। आज हमारा देश जैसे-जैसे दूसरे देशों का मित्र बनता जा रहा है, वैसे-वैसे विभिन्न भाषाओं की किताबें हमारे यहाँ देखने को मिलती जा रही हैं। लेकिन इसी के साथ हमारे अपने अज्ञान का बोध भी दिन-ब-दिन गहरा और गहरा होता चला जा रहा है। जानने के साथ ही बहुत कुछ न जानने का अहसास हमें सालता रहता है।

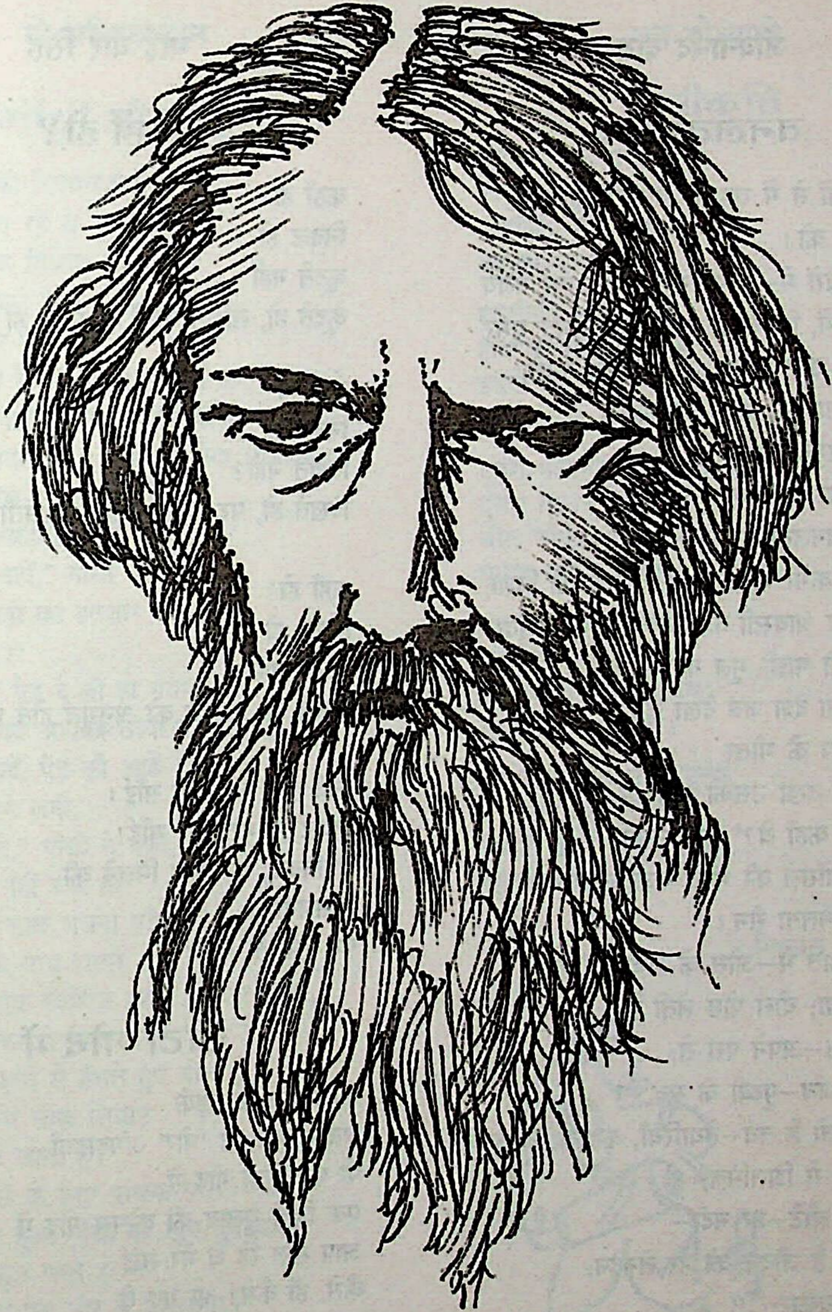


रेखाचित्र : राजी मुत्तुरमन

हमारे परिवर्तन में किताबें प्रेरक एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। किताबें हमारी विचारधारा को परिपक्व करती हैं, यदि विचारधारा नहीं है तो निर्माण में सहायता करती हैं। आप क़िस तरह के व्यक्ति बनना चाहते हैं समाज और दुनिया कैसी हो...इन सबके बारे में किताबों से बड़ा मददगार और कौन हो सकता है? मेरे जीवन के अच्छे-बुरे अनुभवों के बाद बचे हुए वजूद को मैंने किताबों के माध्यम से ही माँजा है। इन्होंने मुझे दृष्टि दी है। भीतर से मुझे शब्दों से साधा है और बाहर से संघर्ष में मदद की है। मधुमक्खी की तरह न जाने किन-किन किताबों ने मुझे वैचारिकता दी है...भाव दिए हैं। आरंभ में *रामचरित मानस* (गोस्वामी तुलसीदास) ने प्रभावित किया था...उसे लेकर अब तक मेरे भीतर रिजर्वेशंस हैं। बाद में *मैला आंचल* (फणीश्वरनाथ रेणु) और *एक थी कावेरी* ने।

किताबों में आप वह पाते हैं, जो उसमें खोज रहे हैं। किताब मार्गदर्शी नहीं, एक माध्यम होती हैं, जो आपकी अंतःप्रेरणाएँ हैं, उनको स्वीकार करने, उनको पहचानने, उनको अभिव्यक्ति देने और उनको पूरी तरह खोलने में मदद करती हैं। मैंने यह देखा है कि जबसे मुझमें चेतना का एक भाव हुआ, एक तरीक़े से सचेत बनाने में इनकी भूमिका काफ़ी महत्त्वपूर्ण रही है।

पुस्तकें साथी हैं। वे निरंतर संदेश देती रहती हैं। वे आदमी से बातें करती हैं। प्रश्न करती हैं और उत्तर भी देती हैं। जीवन में जैसे मित्र को चुनना पड़ता है, उसी प्रकार पुस्तक को भी चुनना पड़ता है। पुस्तक में छपे हुए शब्द बंदी की तरह होते हैं। उस शब्द को अलग-अलग तरीक़ों से बंद जगह से निकालना पड़ता है, मुक्त करना पड़ता है। वे हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। पुस्तकें आदमी के विवेक को माँजती हैं, उसकी ज़िन्दगी को धीमे-धीमे और अंदर से बदलती हैं। किताबों के बिना हमारा जीवन अधूरा है। ❑



रेखाचित्र : रत्नाकर एस. पाटील

हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती है। हमें इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना ही चाहिए।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जीवनानंद दास

वनलता सेन

हज़ारों सालों से मैं राह पर चल रहा हूँ
राह दुनिया की।
रात के अँधेरों में—सिंहल समुंदर से सागर मलय
बहुत घूमा मैं, बिम्बिसार अशोक के जगत धूसर
था मैं वहाँ; और भी दूर अँधेर विदर्भ नगरी;
मैं थका हुआ एक प्राण, चारों ओर
जीवन के समुंदर सफ़ेन,
दिया पल भर के लिए सुकून मुझे—
नाटोर की वनलता सेन ने।
केश उसके कभी के अंधकार विदिशा की निशा,
चेहरा उसका श्रावस्ती की हस्तकारी; दूर समुंदर पर
हाल छोड़ जो मांझी भूल गया दिशा
हरी घासवाला देश जब देखा उसने
दारुचिनि-द्वीप के भीतर
ठीक वैसे ही देखा उसको अँधेरे में;
"इतने दिनों कहाँ थे?" पूछा उसने,
चिड़ियों के घोंसले की भाँति नज़रें उठाए—
नाटोर की वनलता सेन।
हर दिन में अंत में—ओस के शब्द की तरह
आती है संध्या; चील पोंछ लेती है
धूप की महक—अपने परों से;
बुझ जाते हैं जब—पृथ्वी के सब रंग
पांडुलिपि करती है तब—तैयारियाँ, कहानी की ख़ातिर
जुगनू के रंगों से झिलमिल;
सब पंछी घर लौटे—हर नदी—
समापन होता है जीवन को हर लेनदेन;
राह केवल अंधकार;
आमने-सामने बैठने को वनलता सेन।"

बाङ्ला से अनुवाद
विश्वजीत सिन्हा

भाई वीर सिंह

कहाँ हो?

कहाँ हो?
निकट हो
कूदते नहीं?
कूदते हो, लेकिन कानों से सुनते ही नहीं।

कहाँ हो?
निकट हो
दिखते नहीं?
दिखते हो, पर सूरत आँखों में बसती ही नहीं।

कहाँ हो?
निकट हो
मिलते नहीं?
मिलते हो, पर देह को अनुभूत होते ही नहीं।

कहाँ हो? मेरी सुनो साँई।
निकट हो मेरे प्यारे साँई!
हो निकट, पर तड़प मिलने की
सँभालती हूँ
पर सँभलती नहीं।

छोटी गोद में

आज दिन के तड़के
जब ले रही थी 'भोर' अंगड़ाइयाँ
पौ फटने की गोद में,
एक खिले गुलाब की कोमल गोद में
आप खेल रहे थे मेरे साँई
कैसे, हाँ कैसे! आ गए थे
उस छोटी गोद में?
मेरे इतने बड़े विशाल साँई।

पंजाबी से अनुवाद
रेणु प्रूथी

के सच्चिदानंदन

गाँधी और पेड़

नोआखाली की चिलचिलाती धूप में
गाँधी चले जा रहे थे
"रुको, तनिक विश्राम कर लो।"
गाँधी ने मुड़कर देखा :
एक छायादार पेड़ था
"अच्छा आप हैं, मेरे आराम करने का
वक़्त अभी नहीं आया।" गाँधी बोले
पेड़ ने शिकायत की : "सारी दुनिया व्यस्त है,
बुढ़ापे पर फल-फूल नहीं लगे तो
चिड़ियाँ भी छोड़कर चली गईं।"
"कोई बात नहीं," गाँधी जी बोले,
"आप कुल्हाड़ी का इंतज़ार कर रहे हैं,
मैं गोली का।"
"नहीं-नहीं!" पेड़ दुःखी हो गया,
"हर किसी को आपकी छाया की ज़रूरत है।"
वसंत की यादें, पेड़ की आहें
हवा-सी चलने लगी,
"प्रार्थना करो," गाँधी ने कहा,
"यदि आप नहीं रुके तो
मुझे आपके साथ चलना पड़ेगा।"
पेड़ गाँधी के साथ चलने लगा,
हवा चली, एक चिड़िया टहनी पर आ उतरी,
"देखो, मैं फिर से खिल उठा।"
पेड़ सफ़ेद फूलों से हँसते हुए बोला,
"तुमने चलना सीख लिया?
फिर मैं रुक जाता हूँ।"
सभी प्राणियों के लिए प्रार्थना-सा
बाहर बहता हुआ गाँधी का ख़ून बुदबुदाया,
"अरे, मेरे फूल लाल हो गए!"
विमुक्त हुआ पेड़ ज़ोर से चिल्लाया।

फलों का सपना देखती तीन चिड़ियाँ
पूरब से उड़ती चली आईं।

मलयाळम से अनुवाद : रति सक्सेना

जय गोस्वामी

रानीकुठि

भीख माँगने आया भिक्षु
भीख माँगने आया
हस्तलिपि माँग रहा है
बेवक़ूफ़ बेहया

हस्तलिपि माँग रहा है,
हाथ का स्पर्श? वह भी!
इसके बाद क्या माँगोगे? ऊँह,
दूसरे मकान में जाओ

दूसरा मकान! उसका तो कहीं
दूसरा मकान नहीं।
भीख माँगते-माँगते भिक्षु
घूमेगा यहीं पर ही।

इसे दया दृष्टि देकर
थोड़ा-सा ज़रा-सा भी
दो रानीमाँ, आपकी दया,
मानो, लक्ष्मी-प्रतिमा।

वह लौट जाए अपने मुल्क,
वह लौट जाए घर में
रामजी आपका भला करें,
रामजी भला करें।

बाङ्ला से अनुवाद
विकास कुमार भट्टाचार्य



रेखाचित्र : मोहन अंगाने

प्रकाश भातंब्रेकर

न इधर, न उधर

डूबते मस्तूल पर
शीर्षासन करता समाजवाद
लुक-छिपकर दीखते प्रकाश-स्तंभ
के संकेतों को नज़रअंदाज़ करने से
एक विशालकाय चट्टान से टकराकर
चूर-चूर हो गया है,
आत्मा हड़तालों में तालाबंद है
और
तोड़-फोड़ तथा आगज़नी की लपटें
अपनी आगोश में लिये हैं
समूची मानवता को
अब तो बची रही है केवल
राख...
सटोरियों की बोलियाँ
और
डाँवाडोल होता जीवनांक
विवशता के विवर
असंतोष की गहरी खाइयाँ
आत्ममुग्धता के सजीले सुनहरे सपने
और
बेईमानी का घना कोहरा!
श्रमिकों एवं मज़दूरों का हिमायती
मार्क्स
कभी का दम तोड़ चुका है
भूमंडलीकरण के पूँजी-बाज़ार में
अब बचे हैं केवल
आस्था के अवशेष
और
खूँटी पर टँगे लोग...।

कल क्या जानूँ?

कभी मैं हक़ीक़त था
अब इतिहास हूँ
कभी मैं हरिश्चंद्र था
अब लादेन हूँ
कभी मैं सर्जक था
अब सौदागर हूँ
अब जो हूँ सो हूँ
कल शायद परवान हो जाऊँ...।

जय गोस्वामी

मृत्यु कुल लिखाई-पढ़ाई

इंसान कितना कुछ पढ़ता है
मृत्युदिवस पर पढ़ना
    मेघ के पास आता है मेघ
    हाथ के पास हथकड़ी
अपने घर–उस घर में
समूची दुनिया समेटना
    इंसान कितने कुछ बँधते हैं
    आदमी औरत रस्सी रस्सा
पल भर की भूल से
ज़िन्दगी भर बँधा रहना
    इंसान कितना कुछ लिखता है
    मृत्यु कुल लिखाई-पढ़ाई
लिखो नियति को लाँघकर–
लेखन ही तोड़ता हथकड़ी।

बाङ्ला से अनुवाद
विकास कुमार भट्टाचार्य

सरूप ध्रुव

हमीं क्यों?

किसी भी दंगे में हर बार
औरत पर क्यों आती है आँच?
क्यों है ये नफ़रत, ये ज़िल्लत
ये दहशतगर्दी, ये वहशीपन?
आख़िर क्यों???
रज़िया, लक्ष्मी, मरियम, सिमरन, नूर-कन्या का
है यह सवाल
रोज़ा की सहेली, हान्ना की बहनें,
कौसर की बेटी का भी यही है सवाल...
कि दरिन्दों की ये हिम्मत?

बरसों-बरस हमारी ज़मीं पर
हथियारों की फ़सल लेने की मोहलत
क्यों दी हमने उन्हें?
सदियों से मसलते रहे हैं वे कलियों को
उनके नाख़ून क्यों बढ़ने दिए हमने?

नादिरशाहों क्यों पनपने दिया?
क़ौम की आड़ में नफ़रत को क्यों सींचते रहे?

चूल्हे तो ठंडे हैं, किन्तु बस्तियाँ बराबर जल रही हैं
त्राहि-त्राहि मची है पानी के लिए
किन्तु जान पानी में ही छटपटा रही है
फिर भी राजनीति की वल्गा
ज़ुल्मी तानाशाहों के ही हाथों में क्यों?

रिश्ते-नातों के निशाँ तो कभी के मिट चुके हैं
शीशे की किरचें चिर-चिरा रही हैं
शब्दों के अर्थ बर्फ़ बन चुके हैं
ओठों से रिस रहा है लहू...
इन सबके बावजूद
मासूम गुलाबी सपनों की बे-रंग तल्ख़ी क्यों?
इस लहू-लुहान जहाँ में नहीं जी सकेंगे हम
नहीं सहेंगे ज़ुल्मो-सितम
इस जानलेवा छीना-झपटी का हिस्सा क्यों बनें हम?

हमें न मंदिर चाहिए न मस्जिद
अब दीवारें सालती हैं आँखों को

लेकिन हम तो जीएँगे पूरी शिद्दत के साथ
रौंदकर समूची नारेबाज़ी को...
घुटन, सीलन, ज़िल्लत और बेहयाई को

क्या फिर भी इक्कीसवीं सदी के सूर्य को
ढँक सकेगी हैवानियत?

गुजराती से अनुवाद
प्रकाश भातंब्रेकर

खुर्शीद आलम

ढलान

बादल घिरकर आ जाएँ तो
छत पर कपड़े मत फैलाना

रंग गुलाबी उड़ जाएँगे
गलियाँ रास्ते मुड़ जाएँगे
सारी रंगत खो बैठोगी
हाथ भी उनसे धो बैठोगी

ये बरसेंगे बिन बरसात
कहाँ तलक तुम दोगी साथ

भीग के जल थल हो जाओगी

उपर-नीचे
नीचे-उपर
आते-जाते थक जाओगी!!

ए. जे. थॉमस

ईश्वर को नहीं बाँट सकते आप

ईश्वर को नहीं बाँट सकते आप
खुदरा आधार पर
और न ही
क्षण-क्षण घटती हुई घटनाओं की
भविष्यवाणी कर सकते हैं
अगर आपके पास कोई आप्तवचन है
तब अतीत और वर्तमान घटने से रोका जा सकता है
तथा भविष्य हो सकता है सुपरिचित
मगर एक अड़चन है
सूक्ष्म कंपन या लहर भी
सबकुछ अव्यवस्थित कर देगी
और घटनाओं का संपूर्ण उतार-चढ़ाव/ताना-वाना
बेकार हो जाएगा।
बेहतर है, अनपेक्षित की आशा रखें
भविष्य के बारे में सोच-विचार के बजाय
अपनी आवश्यकताओं को पूरा करें
वर्तमान को जीने से आपका जीवन अनुप्राणित होगा।

दूसरों का जीवन जीते हुए

हफ़्ता हुआ हमारे लौटे
यह सप्ताह अगले में बदल जाएगा
और इसी तरह अनेक दूसरों में
संगमरमरी फ़र्श पर धूल है अब भी
कोने-अतरों में जाले
लंबे समय से बंद पड़े कमरों में पुरानी गंध
सब पहले जैसा ही होगा
जब हम यहाँ नहीं रहते
केवल पूर्वाधिकार, आभार
और कार्य रहते हैं यहाँ,
समय प्रत्येक उपभोक्ता की माँग के अनुसार
खुदरा विकता है, डिब्बाबंद और वर्गीकृत होता है
भोजन, मिलन और शयन के लिए
कभी भी पर्याप्त नहीं होता समय।
पराया जीवन जीने और
पराये स्वप्न देखने के लिए विवश हैं हम।

कविता के साथ

मैं कविता के साथ था
उल्लास में खिलखिलाता हुआ
क्रोध में आगबबूला
प्यार में तरल
पूरे पागलपन में चकनाचूर
ईर्ष्या से उत्तप्त
घृणा में निष्कपट
दुःख में स्थिर
करुणा से द्रवीभूत
उत्ताप में उज्ज्वल
और संपूर्ण अनुपस्थिति में ओझल

अब मैं पूरी तरह अकेला हूँ।

अंग्रेज़ी से अनुवाद

देवेन्द्र कुमार देवेश

खुर्शीद आलम

तुम्हारा पत्र

आज तुम्हारा पत्र आया है
पल-पल तुमको सोच रहा हूँ

रेल की सीटी, भागते लोग
नींद से बोझिल भारी आँखें
अनिद्रा के उगते जंगल
बजती पायल बोलते कंगन
कोयल की ये कूक पे जैसे
तेज़ हुई जाती है धड़कन

तन्हा कमरा, चाय के कप से उठती भाप
खिड़की से अब एक कबूतर
उड़ा तो भाप बिखर गई

घबराहट में दरवाज़ा
खोला तो देखा
कुत्तों का इक झुंड है बाहर
और भयानक आवाज़ों में
भौंक रहा है

आज तुम्हारा पत्र आया है
मैं अर्थों के गहरे तह को
खोज रहा हूँ
पल-पल तुमको सोच रहा हूँ!!

हिन्दी एक सरल भाषा है और देवनागरी जैसी सरल लिपि तो शायद ही कोई हो।

—प्यौतर वारान्निकोव

श्याम सुंदर कोचर

नारी

मैंने देखा जब से नारी को
एक प्रश्न उठा
मैं समझ नहीं पाया उसको
उसे पढ़ने से लगा कि उसे गीता कहूँ!
उसके चरित्र को देखूँ तो उसे सीता कहूँ!
उसके रूप से लगा कि वो कामायनी है
या सभी रूपों में पुरुष को स्नेह देनेवाली
मायाविनी है!

ऐ नारी जो भी है तू, पर है महान
तूँ माँ भी बनती है प्रेम भी देती है
पीड़ा भी सहती है,
सभी कुछ सहकर भी कुछ नहीं कहती है
क्योंकि तुझे रखनी पड़ती है सबकी आन
फिर भी नहीं समझ पाता ये पुरुष नादान!

सजी-सजाई

सजी हुई दुल्हन के माथे पर जैसे न हो बिन्दी
इसी तरह होकर श्रीहीन तड़प रही है हिन्दी।

हर वर्ष दुल्हन की तरह, हम इसे सजाते
पर इसके मौलिक तथ्यों को नहीं अपनाते
ए से एप्पल बी से बैट बच्चों को सभी पढ़ाएँ
क, ख, ग के शब्दों को कहने से शरमाएँ।

जब हिन्दी है सबकी भाषा हिन्दोस्ताँ हमारा
फिर क्यों करते हम सब हिन्दी से यूँ किनारा
कितना होगा अच्छा हम सब मिलकर हाथ बढ़ाएँ
इस दुल्हन के माथे को बिन्दी से चमकाएँ।

ज्योतिकृष्ण वर्मा

मेरी कविता

कविता में रस के लिए
खो जाना होता है
कल्पना के संसार में,
जाना होता है दूर
बहुत दूर तक....
और चुनने होते हैं शब्द
बहुत सावधानी से
बिखरे रहते हैं जो
इधर-उधर
बेतरतीब,
कुछ गहरे
जैसे समुद्र में मोती
कुछ हल्के बादल से
कुछ बिलकुल ताज़ा
ज्यूँ हवा का झोंका
कुछ ऐसे भी,
झाड़-पोंछकर जिन्हें
रख दिया जाता है
शोकेस में खिलौनों की तरह,
कुछ वो, जो टीस दें,
कुछ वो भी
जो मरहम बनें—
मैं नहीं चुन पाया उन शब्दों को,
अब तक
अपनी कविता के लिए।

बूढ़ा

घर के
एक कोने में
जहाँ कम है लोगों का आना-जाना
वहीं, दे दिया है उन्होंने
उसे
एक कमरा
और ज़रूरी सामान भी
एक चारपाई,
हाथ का पंखा,
पुरानी टूटी चप्पल,
पानी की बोतल
कटोरी, थाली और एक चम्मच
कुछ दवाइयाँ
ताकि
आराम से बिता सके वो
समय
बाक़ी है जो
ज़िन्दगी और मौत के
दरमियान।

निशांत

बच्चा

कभी जब मायूस हो जाता हूँ,
ख़यालों में कहीं खो जाता हूँ।
तब याद उन पलों की आती है,
गुज़रे वक़्त में फिर जीने को मन करता है।
जब फ़िक्र से कोसों दूर रहते थे,
जो जी में आया हम वो करते थे।
जी में आता है कि मैं सच्चा बन जाऊँ,
काश! मैं फिर से बच्चा बन जाऊँ।

देवेन्द्र कुमार देवेश

आज़ादी

१

आप पूछते हैं उनसे,
आज़ादी किसको कहते हैं?
वे क्या जानें बेबस
फ़ुटपाथों पर जो रहते हैं।

वे तो बस अर्द्धनग्न
सड़कों पर घूमा करते हैं।
वे भूखे-प्यासे, जो
मेहनत कर भी भूखे रहते हैं।

वे क्या जानें बेबस
आज़ादी किसको कहते हैं?
आप पूछते हैं उनसे!
फ़ुटपाथों पर जो रहते हैं।

वे तो बस वर्षों से
देख रहे हैं आज़ादी के सपने।
सपनों में ही पलते

वे सपने, जो हुए कभी ना अपने।
वे सहते, पर सहते कैसे?
भूख-प्यास को उनके बच्चे सलोने।
देख-देखकर ये बातें,
आँखें लगती हैं विलख-विलखकर रोने।

तिसपर, आप पूछते हैं!
आज़ादी किसको कहते हैं?
वे क्या जानें बेबस
फ़ुटपाथों पर जो रहते हैं।

२

वे क्या जानें हरे रंग में
धरती की अँगड़ाई।
केसरिया बाना पहन जिन्होंने
जस्टिस नहीं है पाई।

बाँध सफ़ेदी सर के ऊपर
शांति नहीं मिल पाई
मेहनत का जो चक्र चलावें
तरसें पाई-पाई।

उन्हें जगाने आवे कौन?
कौन जगावे भाई?
उनको उनका न्याय दिलाने
लाल जने को भाई?

वे ना जानें आजादी को
ना पर्वत, ना राई।
धन-धर्म-प्रेमं ने खोदी है जो
को पाटेगा खाई?

सपना भारती

काग़ज़ पर

कुछ ख़याल इतने नाज़ुक होते हैं
कि होंठों पर आते ही अपना वजूद खो देते हैं

अगर चाहते हो उन्हें सँभालकर रखना
तो फिर किसी ऐसे काग़ज़ पर लिखना
जो समा ले ख़ुद में उन नर्म ख़यालों को
और सँजो ले उनका वजूद हमेशा के लिए

जब अचानक फिर दोबारा कभी
हाथ पड़ जाए वो काग़ज़ कहीं
तो पढ़कर उन ख़यालों को सिर्फ़ मुस्करा देना
और इस वफ़ादारी के लिए
उस काग़ज़ का शुक्रिया कहना।

राकेश कुमार वर्मा

माँ की याद

रूठ गई क्यों?
छोड़ गई क्यों?
क्या भूल हुई?
क्या चूक हुई?

जीवन तुम्हारी देन है
अंश तुम्हारा ही हूँ मैं
वही रक्त वही मांस है
बदला सिर्फ़ स्वरूप है
तुम जननी हो मेरी।

ये जीवन धन्य हो गया
जो लाल तुम्हारा कहलाया
धरोहर तुम्हारी ही हूँ मैं
क्या तुम्हें अर्पण करूँ

तुम गुरु मैं शिष्य हूँ
कर सकूँ पालन आदर्शों का
जिसमें तुमने रमा दिया
न बनूँ पथभ्रष्ट कभी
परंपराओं को निभाऊँगा
धरोहर तुम्हारी ही हूँ मैं।

आँचल तुम्हारा पाऊँ कैसे
तुम बिन घर सूना है
बेहाल कोना-कोना है
ज़िन्दगी लगती बोझल है
न सुर है न ताल है
समय तो जैसे थम गया है

आता रोज़ सवेरा है
ताज़ा यादों को करता है
यादें दोपहर को तपती हैं
साँझ ढले भी न ढलती हैं
निशा भी बेबस लगती है
कालिमा ढँक लेती है ज़रूर
रँग नहीं पाती लेकिन।

रूठ गई क्यों?
छोड़ गई क्यों?
क्या भूल हुई?
क्या चूक हुई?

के. जयंती

पहाड़ों की रानी

लाखों करोड़ों लोगों के साथ—
मैं भी हूँ—तुम्हें देखने के लिए आया हूँ...
तुम्हें देख लिया, स्पर्श भी किया
और खींच ली तुम्हारी तस्वीर भी—मगर
दिल में एक कसक है! क्योंकि
तुमने अपने व्यूह में
सारी घटनाओं को समेट रखा है
और युग-युगांतर से सबकी दृष्टि
और जीवन को सफल किया
तथा आनेवाली पीढ़ियों के लिए
एक मिसाल बन गई हो
हे पहाड़ों की रानी!

मेरे जैसे पर्यटक
एक दिन तुम्हारे बारे में सोचेंगे
तुम पत्थर की होके भी जीवंत हो।
मेरी प्रिय पहाड़ों की रानी
अपने स्वप्नों के बारे में
मुझे अपना मन खोलकर बता दो
मैं उन्हें साकार करूँगा
ये मेरा वादा है!

तमिष़ से अनुवाद
के.जी. रामलिंगम

रजनीश राना

आहत

आहत हुआ मैं
जानकर
अपनों के बारे में।
वे जो मेरे मित्र थे,
मेरे हितैषी थे,
साथ खाते-पीते
उठते-बैठते थे।
वही करते दोग़ली बातें
समृद्धि देख जलते,
पीठ पीछे ज़हर उगलते
और
सामने आकर प्यार जताते।

इसीलिए लिया एक दिन
कठिन निर्णय
छोड़ दूँगा ऐसे लोगों से बात करना
छोड़ दूँगा उन्हें अपना कहना।

मन में चलता रहा—अंतर्द्वन्द्व
निर्णय मेरा सही था या ग़लत
फिर किया अपने निर्णय का मूल्यांकन
और
पाया खुद को तन्हा।

इसी निर्णय के कारण
आधे समाज से कट चुका था मैं।
एक बार पुनः
आहत हुआ मैं,
ऐसा निर्णय लेकर।

शम्मी विरमानी

मेरे वो अपने

मेरे वो अपने आज कहाँ हैं?
कहाँ खो गए हैं,
जिन्हें हर सुख में, हर दुःख में,
खोजती हैं ये मेरी आँखें।
मेरे आने पर जो खुश हुए थे,
उनके जाने पर मैं ख़ूब रोई।

आज मेरा अंश मुझे टकटकी लगाए देखता है,
चाहता है वही जो चाहती थी मैं किसी से।
उसके चाहने में, अपनी चाह नज़र आती है,
उसकी चाहत से मेरी खोज पूरी हो जाती है।

उड़ान

उड़ने की चाह मुझमें भी है
उस पंछी की तरह,
जो उड़ रहा है लगातार।

तेज़ या मंद गति का बहाव
जो अपनाया है उसने,
वो मुझमें नहीं है क्या?
क्या उड़ने की कला सीखनी पड़ती है?
तो कहाँ से सीखा इस पंछी ने
जो थका नहीं,
अपनी मंज़िल की तलाश में
आँखों से ओझल होने पर भी
क्या पा गया अपनी मंज़िल को या—

वो रह-रहकर मुझे खींच रहा है अपनी ओर,
यह चाह मुझमें भी जगी है,
क्या उसकी तरह मुझे मिलेगी मंज़िल?
या ढूँढ़ते-ढूँढ़ते इसी तरह
खोना होगा,
मुझे भी अपना
धरातल।

भुवनचंद्र पांडेय

सरस्वती पुत्र

जब भारत आज़ाद हुआ था
नव प्रभात उदय हुआ था
स्वतंत्रता के मूल्यों को पहचाननेवालों ने
अंधकार को मिटानेवालों ने
नया हिन्दुस्तान बनानेवालों ने
माँ सरस्वती की वंदना की
दीप ज्योति प्रज्वलित की
साहित्य अकादेमी की स्थापना की

भाषाओं को नवज्योति दिखाने के लिए
सिन्धु को महासागर बनाने के लिए
ज्योति को हर क्षेत्र में प्रकाशमय बनाने के लिए
एक-दूसरे के बारे में जानने के लिए
साहित्य का नवदीप जलाया था
सब भाषाओं को एक स्थान पर
आगे बढ़ाने का कार्य करके
नेहरू जी ने ही दिखाया था

देखा था जो सापना
इसके संस्थापकों ने
समस्त भाषाओं के साहित्य के एक मंच का
अब पूरा होता दिखता है।

आज बाईस भारतीय भाषाएँ
एक दूसरे के ग़लबहियाँ डालें
इठला रही हैं
इस स्वर्ण जयंती वर्ष में।

समय जब पुकारता है

समय जब पुकारता है
पुकारता ही रहता है
अखंड ज्योति को भी
धूमिल कर देता है
प्रचंड प्रकाशवाले सूर्य को
अंधकार में बदल देता है।

इंसान फिर किस बात पर
गर्व करता है?
पतन एवं पतझड़ से
क्यों वह नहीं डरता है?
घमंड में चूर होकर
जब वह मदहोश होता है,
होश में रहते हुए भी
होश खो बैठता है।

फिर जब समय का
सुदर्शन चक्र चलता है।
अपनी करनी पर वह
बार-बार सोचता है।
पर समय निकल चुका होता है।
और इंसान बस सोचता रह जाता है।

इसीलिए लोग इसको समय कहते हैं।
वे सदा इसी से डरते हुए
बार-बार इसको प्रणाम करते हैं।

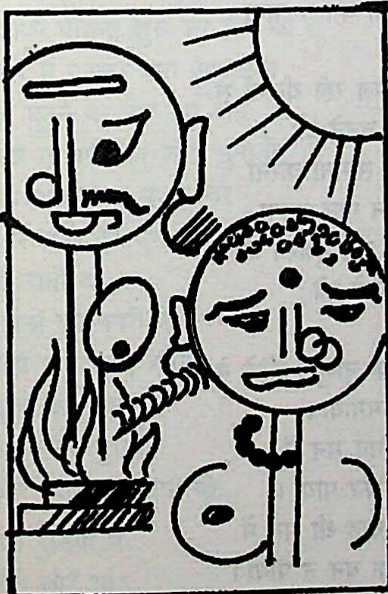
ऐ समय, तू एक बार नहीं, बार-बार आ,
बुराई को ख़त्म कर अच्छाई ला।

हरीश सिंह कंडारी

ज़िन्दगी-मौत

एक दिन ज़िन्दगी और मौत में
छिड़ गई भयंकर जंग
कौन बड़ा है? कौन भला है?
था ये दोनों में दंभ
ज़िन्दगी इठलाती बोली,
"मैं तो हूँ चाहत सबकी
इसलिए मैं ही हूँ महान
ऐ मृत्यु, अब तू भी तो कर
अपना कुछ बखान।"

मृत्यु धीमे से बोली,
"माना तू है चाहत सबकी
पर तू है बेवफ़ा
देती न पूरा साथ कभी
मैंने तो हमेशा सबका साथ निभाया
अगर तू है चाहत सबकी
तो मैं हूँ एक सच्चाई
क्या अब भी तेरी समझ में
ये बात नहीं आई?"



रेखाचित्र : मोहन अंगारे

दुर्घटना

जिंसे खिलाया था कभी माँ ने अपने आँचल में
आज पड़ा है वो बेचारा घायल एक सड़क पर
अपने ख़ून से सींचा था जिसको
वही ख़ून से लथपथ होकर
दूसरी ही दुनिया में खोया है।

कतरा रहे हैं सभी तमाशबीन
पास उसके जाने को।
तड़फ रही हैं उसकी साँसें
ज़िन्दगी पाने को।

ज़िन्दगी और मौत में मचा हुआ है द्वंद्व
लेकिन हिम्मत नहीं किसी में किं
देकर सहारा उसे पूछे उसका हाल
तमाशबीन बनकर दुनिया उसे देख रही थी
जाननेवाले भी अनजान बन
उसकी लाचारी देख रहे हैं।

काश! कोई तो उसे सँभालता,
पर पड़ा रहा वो बेचारा एक नज़ारा बनकर
आख़िर ज़िन्दगी भी कब तक साथ उसका देती,
जब अपनों ने भी न दिया साथ उसका।

छुड़ा लिया दामन उससे ज़िन्दगी ने अपना
लेकिन मौत आई और उसका दामन थाम लिया
लेकर उसे साथ अपने एक अनंत राह चल पड़ी
बनकर उसका एक हमसफ़र
तमाशबीन दुनियावालों ने भी उसे बेचारा कहकर
अपना दामन झाड़ा और पकड़ ली अपनी डगर।

संजय गुप्ता

कविता

साहित्य जगत में फैली महामारी
सबके कवि बनने की
न चाहते हुए भी
मुझे भी जकड़ा इस बीमारी ने
दर्जनों कविताएँ पढ़ीं मैंने
पर समझ में मेरे कुछ न आया
लेकिन मेरे भीतर
कविता का कीड़ा कुलबुलाया
कर तुकबंदी और छंदों की नसबंदी
लिख मारी मन की भड़ाँस काग़ज़ पर
छप जाए अगर कहीं तो कविता है
वर्ना साहित्य पर पलीता है
मेरा तो मन पहले ही मर गया
फिर भाव कहाँ से लाऊँ मैं
लेकिन अपने भीतर की पीड़ा को
ढालना चाहता हूँ शब्दों के बंधन में
आज नहीं तो कल होगी
मेरी भी एक नई कविता।

निशांत

इनायत

आके तेरे जहान में
आरज़ू जो हमने की,
क्या बात है–
जो कभी पूरी हुई हो कभी।
यूँ तो तेरी दया की
कभी कमी नहीं रही,
क्या बात है–
गर इनायत होती तेरी कभी।
जैसा हूँ, अच्छा हूँ,
ज़िन्दा हूँ–
मगर ज़िन्दगी जी ही नहीं कभी

मदन सिंह

कवि की चाह

कवि बनने की चाह थी मन में
लेकिन अभी तक बन न पाया
लिखने की इच्छा बहुत थी
लेकिन कभी लिख न पाया।
आग से खेलने की थी तमन्ना
लेकिन अंगारों का डर समाया
खुशबू लेने की चाह थी फूलों से
लेकिन काँटों ने बहकाया।
लड़ने की तमन्ना थी सरहद पर
लेकिन सेना में जा न पाया।
छूने की चाह थी गगन को
लेकिन कभी उड़ न पाया।
तैरकर पार करने की सोची थी
लेकिन समुद्र मिल न पाया।
चढ़ने की इच्छा थी पर्वतों पर
लेकिन रास्ता बन न पाया।
कवि बनने की चाह थी मन में
लेकिन अभी तक बन न पाया।

ज्यों ही सीख मिल रही थी माँ से–
जीवन में कर्मठ बनने की
हर मुसीबत का सामना करना
संकट में कभी न पीछे हटना
ज़िन्दगी में कुछ कर गुज़रने की
हर मंज़िल को पाने की

तभी हवा के इक नाजुक झोंके ने
सारा जीवन डगमगाया।
सारे अरमां रह गए मन में,
कुछ भी पूरा न कर पाया।
कवि बनने की चाह थी मन में
लेकिन अभी तक बन न पाया।

श्याम सिंह चौहान

माँ की थपकियाँ

माँ तुम्हारी प्यार भरी थपकियाँ
मधुर लोरियाँ भूल चुका हूँ
वह सपनों की दुनिया
कभी उड़ान भरता आकाश में
गिर जाता फिर धरती पर

कभी परियों के साथ हँसता
दैत्यों से डरता
चीख़ उठता एक शब्द—माँ
छाती से लगाती आँचल में छुपाती
सिर पर फेरती हाथ
कितना सुकून मिलता तेरे साथ।

सुबह-सवेरे
जब उत्तर दिशा का तारा
टिमटिमाता रहता था
चक्की पीसना शुरू कर देती थी तू
और मैं उठकर पास आ जाता
तेरे घुटने पर सिर रख देता
और तू थपककर लोरी सुनाती
वह चक्की का मधुर स्वर
और लोरी की धुन
ले जाती थी
सपनों की नगरी में
जहाँ परियों की हँसी
फूलों का विछौना,
अमृत की सुगंध
और प्यार क़ी भाषा थी...

उस दुनिया में
कैसे लौटूँ माँ?

सरस्वती का मंदिर

मंदिर है छोटे से गुंबदवाला
ये त्रिभुजाकार रवीन्द्र भवन
परिकल्पना है ये
पंडित नेहरू की

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की
मूर्ति है प्रवेश आँगन में
पूश्किन की प्रतिमा है विशाल
यहाँ होती है गोष्ठियाँ
विद्वानों, कवियों और लेखकों की
चित्रकारों के लगते हैं मजमे
गूँजती हैं धुनें
सितार और बाँसुरी की
झूम उठते हैं कलाकार

कलावीथियों में
हँसती हैं मूर्तियाँ
जीवंत हो उठते हैं चित्र
पुस्तकालय में किताबों की
एक भरी-पूरी दुनिया है
जिनमें खो जाते हैं पाठकगण
प्रवेश द्वार के पास
मज़ार को ढँक लिया है
पेड़-पौधों और लताओं ने
आगे-पीछे पार्क में
छाई है हरियाली
किनारों पर खड़ी हैं
फूलों की क्यारियाँ
बीच में डूबे हुए हैं लोग
अपनी-अपनी मंज़िल के
सपनों में।

वीरेन्द्र राउत

क्या लिखूँ?

समझ में नहीं आता क्या लिखूँ
तूफ़ान पर लिखूँ या आँधी पर
समझ में नहीं आता क्या लिखूँ
नेहरू पर लिखूँ या गाँधी पर

फ़सल पर लिखूँ या पानी पर
राजा पर लिखूँ या रानी पर
बैंगन पर लिखूँ या आलू पर
समझ में नहीं आता क्या लिखूँ
शरद पर लिखूँ या लालू पर

पुण्य पर लिखूँ या पाप पर
हेमा पर लिखूँ या अमिताभ पर
गद्य पर लिखूँ या पद्य पर
समझ में नहीं आता क्या लिखूँ
रवीन्द्रनाथ पर लिखूँ या प्रेमचंद पर
फंदे पर लिखूँ या फाँसी पर
इंदिरा पर या रानी झाँसी पर
राम पर लिखूँ या भोले पर
समझ में नहीं आता क्या लिखूँ
कर्मा पर लिखूँ या शोले पर

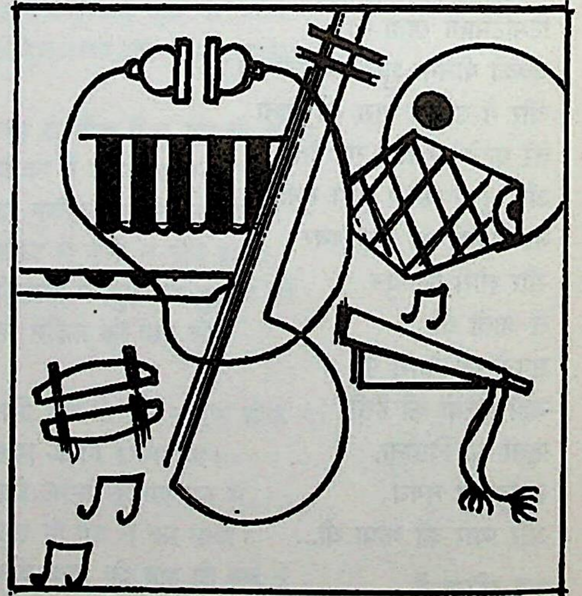
पर्वत पर लिखूँ या चट्टान पर
सचिन पर लिखूँ या पठान पर
गड्ढे पर लिखूँ या खाई पर
समझ में नहीं आता क्या लिखूँ
सीता पर या मीराबाई पर

मक्खी पर लिखूँ या तितली पर
गीतांजलि पर या अंजलि पर
हाथ पर लिखूँ या कमल पर
समझ में नहीं आता क्या लिखूँ
सोनिया पर लिखूँ या अटल पर

गद्दी पर लिखूँ या आसन पर
समझ में नहीं आता क्या लिखूँ
प्रशासन पर या शासन पर

अचानक क़लम रुकी मेरी
बोली आगे अब न लिख सकूँगी
धीरे से मैंने उसे सहलाया
सबसे बड़ी है तुम्हारी माया

मुझे तुमसे बड़ी ममता है
तुम होवो न इतनी बेवफ़ा
क्यों होती हो मुझसे ख़फ़ा
लेखनी तुझमें शक्ति है
शब्द पैदा करने की क्षमता है।



रेखाचित्र : मोहन अंगाने

कुलदीप चंद्र

भोलाराम

अब खुशी से रहेगा भोलाराम
क्योंकि अब हो गया है वह रिटायर
सरकारी नौकरी से
अब नहीं होगी उस पर सरकारी
नियमों की कोई पाबंदी
नहीं करनी पड़ेगी उसे अब खुशामद
छोटे-बड़े बाबुओं की,
भोलाराम की सारी उम्र बीत गई
चतुर्थश्रेणी पद पर जी-हुजूरी करते
अब वह उत्साह से भरा है
क्योंकि अब मिलेगी घर बैठे पेंशन
तीन साल से हर रोज़
भोलाराम पूछता है पोस्टमैन को
अपने नाम के सरकारी लिफ़ाफ़े के बारे में
जिसमें आना था उसका पेंशन ऑर्डर
इस दौरान उसने बेच डाले हैं
घर के सब बरतन एवं बीवी के जेवर
घर की दाल-रोटी चलाने में
कि शायद इकट्ठा मिलेगी पेंशन।
हारकर भोलाराम पहुँचता है पेंशन ऑफ़िस
दिन भर काटता है वह चक्कर
छोटे बड़े बाबुओं के कमरों का
मालूम पड़ता है पेंशन फ़ाइल
बड़े साहब के पास ही पड़ी है दो साल से
लेकिन फ़ाइल में 'वज़न' न होने से
उड़ गए हैं उसमें से कुछ काग़ज़ात।
वे कहते हैं बचे काग़ज़ों में वज़न रखने को
जिससे बन सके भोलाराम की पेंशन की बात,
पहले तो भोलाराम समझ नहीं पाता 'वज़न' का मतलब
फिर वह चुपचाप चला जाता है
कमरे से बाहर 'वज़न' की तलाश में।

ग़रीबी

सुबह-सुबह देखा
एक छोटी-सी लड़की को कूड़ा बीनते हुए
सहम-सी जाती है वह देखकर
स्कूल जाते हमउम्र बच्चों को
छुपा लेती है अपने हाथ के पुराने काले थैले को
जो कभी था बिलकुल सफ़ेद
जब था वह परचून की एयर कंडीशंड दुकान में
दस किलो आटे का पैक थैला
सोचती है लड़की कूड़े के थैले की जगह
उसे भी मिलता स्कूल का बस्ता
स्कूल जाते बच्चों की तरह
खाती वह भी सुबह-सुबह गरम-गरम पराठे
मदर डेरी दूध से बनी चाय के साथ
वह भी पहनती अच्छी ड्रेस
कमर में बेल्ट, गले में टाई
पीठ पर बैग और उससे लटकता
एक सुंदर-सा काँच का छल्ला
जिसे पापा ख़रीद लाते सोम बाज़ार से
लेकिन मम्मी-पापा नहीं हैं उसके
शायद इसीलिए नहीं जाती वह स्कूल
अबोध होने के कारण
वह रोक भी नहीं पाई थी उनको
उसे असहाय छोड़ जाने से
सोचती है बच्ची अगले जन्म में
नहीं मरने देगी वह मम्मी-पापा को
अकाल से
नहीं जाएगी वह कूड़ा उठाने
वह जाएगी स्कूल पराठे खाकर
रिक्शे में बैठकर
औरों की तरह हाथ हिलाकर
मम्मी को बाय-बाय करते हुए।

मिहिर कुमार साहु

बाबूजी

उस दिन ऑफ़िस से लौटते हुए थोड़ी देर हुई। कॉल बेल की आवाज़ सुनकर मिली ने आकर दरवाज़ा खोला। मेरे हाथों से ऑफ़िस बैग लेकर एकदम से वह मुड़कर चली गई। अन्य दिनों की तरह मेरे घर के अंदर घुसने के बाद दरवाज़ा बंद करने के लिए वह रुकी नहीं। मैंने स्वयं ही दरवाज़ा बंद किया। जूता के स्टैण्ड में जूते खोलकर रखे। बबलू की भी कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। वह तो मेरे ऑफ़िस से आने के बाद दौड़कर मेरे पास आता था। क्या वह सो गया है? बाबूजी के कमरे से टी.वी. की आवाज़ सुनाई पड़ती है, क्या आज वे टी.वी. नहीं देख रहे हैं? हाँ। सही में टी.वी. भी बंद है। बाबूजी बिस्तर पर उस तरफ़ करवट लेकर लेटे हुए थे। माँ बरामदे में थी। एक अजीब-सा सन्नाटा घर में पसरा हुआ था। मिली दरवाज़ा खोलकर अचानक चली गई—मुझे अजीब-सा लग रहा था। मैं अपने कमरे में पहुँचा। बिस्तर पर मेरा चार साल का बेटा बबलू सोया हुआ था।

मिली उसी के पास मुँह झुकाए बैठी हुई थी। क़मीज़ के बटन खोलते-खोलते मैंने मिली से पूछा, "क्या बबलू सो गया है?"

"हाँ, अभी तो रोते-रोते सोया है?"

रोते-रोते बात सुनकर क़मीज़ के बीच वाले बटन पर मेरा हाथ रुक गया।

"क्यों रो रहा था?"

"बाबूजी ने उसको खूब ज़ोर से थप्पड़ मारा है।"

मुझे धक से लगा। चार साल के अबोध बबलू ने ऐसी क्या ग़लती कर दी कि बाबूजी ने उसे थप्पड़ मार दिया। मैं सोच में पड़ गया। लगता है मिली मेरे मन की भावना को समझ गई।

"बाबूजी टी.वी. में एक सीरियल देख रहे थे और बबलू उन्हें तंग कर रहा था। इसलिए थप्पड़ खाया।"

मैं कुछ नहीं बोला। बाथरूम गया। बाथरूम में सोचता रहा—आज लगता है, बाबूजी इसीलिए टी.वी. नहीं देख रहे हैं। साढ़े नौ बज रहे हैं, अभीतक खाना भी नहीं खाया हैं। यही सब सोचते-सोचते बाथरूम से आया। माँ को बुलाकर कहा, "क्या आज खाना-पीना नहीं होगा?"

"हाँ—बाबूजी तो अभी तक बुलाए नहीं।"

मैं बाबूजी के पास गया। बाबूजी को बुलाया।

"बाबूजी! बाबूजी! आइए नौ बजकर चालीस हो रहा है, खाना खाया जाए।" देखा बाबूजी एकदम नहीं सोए है। मुँह घुमाकर वैसे ही सोते-सोते बोले, "तुम खा लो। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है, बाद में मैं खा लूँगा।"

रात में हमेशा मैं और बाबूजी डाइनिंग टेबुल के इस पार उस पार बैठकर खाना खाते हैं। बाबूजी के पास मिली और मेरे पास माँ खड़ी रहती है। बाबूजी की यह बात कि 'तुम खा लो' मुझे अच्छा नहीं लग रहा है और 'मैं बाद में खा लूँगा' सुनकर मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा। बाबूजी की पीठ पर हाथ रखकर मैं अचानक बोल बैठा, "क्या अच्छा नहीं लग रहा है बाबूजी?"

बाबूजी मेरे तरफ़ मुँह घुमाकर उठकर बैठे और माथा नीचे के तरफ़ करके भरे गले से मुझे बोलने लगे, "मैंने आज तुम्हारे बेटे को गुस्से में आकर एक थप्पड़ मार दिया।"

बाबूजी को इस तरह का अपने आपको अपराधी सोचना मुझे अजीब-सा प्रतीत हुआ। बाबूजी का पितृभाव मेरे मन पर एक अमिट छाप छोड़ गया। बाबूजी का मानसिक कष्ट बबलू के शारीरिक कष्ट से और अधिक लग रहा था। हो सकता है, बाबूजी ने अगर इस उम्र में मुझे एक थप्पड़ मारा होता या फिर मैंने बबलू को एक थप्पड़ मारा होता तो इतना अधिक मानसिक कष्ट हमलोगों को नहीं हुआ होता।

बाबूजी और मैं दोनों इस बात को समझते हुए भी स्पष्ट रूप से आपस में एक-दूसरे को यह बात खुलकर नहीं कह पा रहे थे।

बाबूजी को मैं बबलू की तरह खाने के लिए उठाकर ला रहा था।

अरुण कांजिलाल

आजिजुल

आजिजुल गहरी रात को निशिकांत के सोने के कमरे की खिड़की के पास आ खड़ा हुआ। उसका सारा बदन पसीने से सराबोर था। उसके दोनों घुटने लाल-लाल धूल से भरे थे। शाम से ही वह अड़ोस-पड़ोस में चहलक़दमी कर रहा था। निशिकांत के इर्द-गिर्द हमेशा की तरह लोगबाग मँडरा रहे थे। ऊपर से आज थाने के बड़े बाबू भी पधारे थे। पहले की दी हुई चेतावनी याद करके वह रात गहराने पर ही आया। गाँव-घर में इस समय घना अँधेरा है।

निशिकांत सोने की तैयारी कर रहा था। लैंप की मद्धिम रोशनी में आजिजुल ने देखा निशिकांत मंडल घुटनों के बल बकैयाँ करते-करते मसहरी को गद्दी के नीचे ठूँस रहा है। पल भर इंतज़ार के बाद आजिजुल पुकार उठा, "मंडलदा, हो मंडलदा!"

"कउन, कउन है रे?" निशिकांत बिस्तर पर बैठ गया।

"इतना चिल्लावत काहे बा? मैं आजिजुल हूँ।" दबी आवाज़ में वह कहता है। पुरानी बैटरीवाले टॉर्च की मद्धिम रोशनी का एक टुकड़ा आजिजुल के मुँह पर आ टिकता है। थोड़ी देर बाद सामनेवाला दरवाज़ा खुल जाता है। आजिजुल तड़ाक से अंदर घुस पड़ता है।

निशिकांत गुस्से से भड़क उठा और झल्लाकर कहा, "इहे तोरा बखत हुआ? दस दिन का टैम दिया था तोकों। वो कब को ख़त्म हो चुका। वह पोस्ट निकलने के बाद से तोरी ही बात सोच रहा हूँ। तो तूने का तय किया?"

"अउर का सोचूँ, देर हो गईल। एक पयसा भी दे नाही सकत। पर यह नोकरी त मोको ज़रूर चाहिए।"

निशिकांत निराश हो गया। वह बात को पलटता है, "मैंने सुना, तूने अपने मकान को गिरवी रखके रुपया उधार लिया। दो साल बियाज तक देने का भी नाम नाही लिया। बेरोजगार आवारा बनके घूमत फिरत है। तोरा बापजान हमार दोस्त था। सोचा था कि ई काम मिलने पर कम-से-कम महाजन का उधार तो उतार सकेगा।"

"मैं एक पयसा भी दे नाही पाऊँगा।" आजिजुल घूँट पीकर बोला।

"एक पयसा भी दे नाही पाएगा, तो कैसे चलेगा? दस हज़ार माँगा था, कम-से-कम आठ हज़ार तो देना ही पड़ेगा। कित्ते कित्ते आदमी आ रहे हैं, एक त पंद्रह हज़ार तक देने को तैयार है। मैंने उसे यह कहकर टाल दिया कि अच्छा देखूँगा। तुझसे वादा किया था कि तुझी को ले लूँगा। अब तू आकर बतातवत है कि मैं एक पयसा भी दे नाही सकत।"

यह कहकर कल्ला कसकर निशिकांत पलंग पर पालथी मारकर ढंग से बैठ गया।

आजिजुल गुमसुम बैठा रहा। वह आसमान ज़मीन सोचने लगा। थोड़ी देर बाद वह मिनमिनाया, "मेरा बापजान तोहार लिए कम बेगार नहीं खटा। आज बड़ी मुसीबत में पड़कर तुमसे मिन्नत कर रहा हूँ।"

इस सत्य को नकारने का कोई मौक़ा नहीं है। आजिजुल का अब्बाजान गफ़ूर मियाँ एक पुश्तैनी किसान था। वह गठीले बदन का हट्टा-कट्टा आदमी था। पैसे का लालच दिखाकर निशिकांत ने उसको अपने गुट में शामिल कर लिया था। गफ़ूर के कारण ही आज निशिकांत की इतनी बढ़ोतरी है। पास में ही दुबराजपुर रेलवे स्टेशन है। रेल की लाइन अंडाल से साँइथिया होकर वीरभूम जिले का सीना चीरकर चली गई। कुछ ही दूर पर रामपुरहाट, नलहाटी है। क़रीबन तीस हज़ार लोगों का निवास है इस दुबराजपुर में। कोयले के कुछ चोरबज़ारिये हैं। वहाँ इसी रेललाइन से निशिकांत का चुराया हुआ कोयला पांडवेश्वर और उखरे की कोलियारियों से आता था। गफ़ूर इस काम में माहिर बन गया था। साल-ब-साल इंजन-ड्राइवरों के मिलीभगत से वह सधे हाथ से कोयले की चौकी मारता था और निशिकांत का ख़ज़ाना भरता था। इस काम में जान की ज़ोखिम थी। कोयले के माफियों और उसके दलबल में अक्सर-औक़ात

मारपीट लगी रहती थी। पांडवेश्वर के रेलवे यार्ड में ऐसी एक मारकाट के समय आर.पी.एफ़. के सिपाहियों ने गोली दाग़ दी। गोली गफ़ूर के पैर में लगी। जान से तो वह बच गया, पर उसकी एक टाँग हमेशा के लिए बरबाद हो गई। आजकल आजिजुल का गुमराह अब्बाजान कोठी में ही बैठा है। बहुत ही तकलीफ़ से टाँग घसीट घसीटकर चलता है।

पर निशिकांत रुका नहीं। कोयले से रद्दी लोहे की छाँट, लोहे की छाँट से धान, चावल, सभी चीज़ों के कारोबार ही उसने किए। सीधे रास्ते पर वह कभी नहीं चला। उसके घर बहुत-से लोगों की आवाजाही है। थाने के बड़े बाबू से उसका हेलमेल है। सभी जगह पर उसका रोब है।

यह नौकरी ऐसी ख़ास कुछ नहीं। जूट कॉरपोरेशन ठेकेदारों की बिचवानी से कुछ लोकल लड़कों को नाइट-वाचमैन के रूप में तैनात करेगा। कॉरपोरेशन का मुख्य कार्यालय कोलकाता में है। दूरदराज के गाँव के जूट के किसानों से सरकार के नियत दामों पर वे जूट ख़रीदते हैं। जूट की यह ख़रीदारी साल के एक नियत समय पर ही चलती है। कॉरपोरेशन के गोदामों में यह जूट इकट्ठा किया जाता है। ऐसे गोदाम गाँव में होते हैं। मुक़ामी ठेकेदारों के माध्यम से ही इन गोदामों की देखरेख चलती है। नाइट-वाचमैन की तनख़्वाह सिर्फ़ डेढ़ हज़ार रुपया है। वह भी ठेकेदारों की मर्ज़ी के मुताबिक़ तीन या पाँच या सात महीनों में एक ही बार मिलेगी।

निशिकांत ने एक लंबी डकार लेकर मुँह बिचकाया। थाने के बड़े बाबू के पधारने के कारण आज देर रात को कुछ खाना-पीना हुआ। बेताब होकर वह कह उठा, "डुनेशन तो देना ही होगा रे। डुनेशन के बिना नौकरी मिलत है का! मैं पच्चीस हज़ार तक देने को तैयार हूँ, कोई मेरे छोटे भाई को एक नौकरी दिला दे त।"

आजिजुल मन मारकर चुपचाप बैठा रहा। उसके मुँह में कोई ज़बान नहीं। उसके चारों ओर उदासी छाई है। नौकरी तो होनेवाली है ही नहीं, कल के दाना-पानी का जुगाड़ कैसे होगा, यही चिन्ता उसे सता रही है। किसान का बेटा, खेती-बारी पर ही गुज़र-बसर चलता है। अम्मा को मरे आज बहुत दिन हो गए। अब्बाजान जब गोली खाकर सिउड़ी के सदर अस्पताल में पड़ा था, तब उसने अपनी ज़मीन गिरवी रखकर दस हज़ार रुपया सूदख़ोर मदन मंडल से उधार लिया था। थाना-पुलिस और अस्पताल करते करते ही वह रुपया उठ गया। अगले एक महीने में रुपया वसूल न कर सकने से फिर एक साल के लिए ज़मीन हाथ से निकल जाएगी। ज़मीन पर क़ब्ज़ा बनाए रखने पर ही मदन मंडल खुश है। वह निशिकांत का साला है। वह ज़मीन आजिजुल की अंधे की लकड़ी है। बाक़ी ज़मीन उसने ठेके पर दे दी। इस ज़मीन को उसने बहुत दिन तक अपने पास सँभाले रखा है। व्यापार या दूसरा कोई काम-धंधा करने के लिए उसके पास न दाम है, न दम। कमरे में धीरे-धीरे ख़ामोशी छा रही है। लैंप की मद्धिम रोशनी दोनों के बीच तिरतिर तैर रही है। केवल दो काली-काली छायाएँ दीवार से सटकर छत के क़रीब आपस में मिल रही हैं।

अचानक आजिजुल सीधा तनकर खड़ा हो जाता है। मुट्ठी कसकर वह बोल उठता है, "निशिकांत दा, लानत है ऐसी नौकरी पर। घूस की नौकरी में नाही करूँगा। तुम यह नौकरी अपने भाई को ही दे दो। मैं चलता हूँ।"

निशिकांत अचकचाकर चिल्ला उठता है, "तू ग़लती कर रहा है रे आजिजुल! तीन हज़ार अब दे देता, बाक़ी रुपया तनख़्वाह से ही आहिस्ते-आहिस्ते दे देता।"

पर आजिजुल सीधा चलते बनता है। निशिकांत की आवाज़ उसने सुनी-अनसुनी कर दिया। घने अँधेरे में उसका सारा बदन थर-थर काँप रहा है। उत्तेजना में ही वह मन-ही-मन चैन महसूस कर रहा है। उसने ठीक ही किया।

सूरज निकलने के पहले ही आजिजुल अपने ठिकाने पर वापस आ गया।

□

बाङ्ला से अनुवाद

ननी शूर

> स्वतंत्र भारत में अंग्रेज़ी को अनिवार्य रखना राष्ट्रीय स्वाभिमान के प्रतिकूल है।
>
> *—जयप्रकाश नारायण*

कहानी

मधुमालती जैन

टी. वी. सीरियल

"मेरा सीरियल लगा रहा है कि नहीं।"

"नहीं, मेरी कार्टून आ रहा है। मैं यही देखूँगा।"

"चुपचाप मेरा सीरियल लगा दे, नहीं तो...।"

"नहीं तो क्या? दीदी आप बड़ी हो तो क्या आपकी ही मर्ज़ी चलेगी?"

"इसमें बड़ी की क्या बात है। कभी तेरा मैच आ रहा होता है तो कभी कार्टून। तुझे पता है न, मेरी परीक्षा सिर पर है। मैं यह सीरियल देखते समय खाना खाती हूँ, ताकि मेरा ज़्यादा समय ख़र्च न हो। देखने दे न मुझे।" पायल अनुनय करती हुई बोली।

"ठीक है, इस तरह कह रही हो तो चैनल बदल देता हूँ।" अनंत ने जैसे ही चैनल बदला, लाइट चली गई। पायल गुस्से से अनंत को देखने लगी, फिर रुआँसी हो गई।

"अब मेरी क्या ग़लती है?"

"तू तो चाहता यही था।" कहते हुए पायल पैर पटकती हुई अपने स्टडी रूम में चली गई।

यह एक दिन की नहीं, आए दिन की बात हो गई थी। पायल को या तो सीरियल देखना पसंद था या फिर गाने। अनंत देखता था—कार्टून, मैच या नेशनल ज्योग्राफ़ी चैनल।

बच्चों के पापा यानी रितेश दफ़्तर से आकर फ्रेश होते, कुर्ता-पायजामा पहनकर जो टी.वी. के सामने बैठते तो रात साढ़े ग्यारह बजे ही उठते। या तो उनके मनपसंद सीरियल का समय हो जाता या समाचारों का।

वहीं बैठे-बैठे ख़ाना-पीना, साथ ही बच्चों को हिदायत देना, "पढ़नेवाले बच्चे इस तरह सबके बीच में नहीं बैठते। न ही टी.वी. देखते हैं। जाओ, जाकर अपने कमरे में पढ़ो। पेपर नज़दीक आ रहे हैं।" लेकिन अगर किसी सीरियल का या फ़िल्म का कोई सीन, गाना अच्छा लगता तो आवाज़ भी लगाते, "पायल...अनंत...जल्दी आओ, देखो कितना अच्छा सीन है।"

मैं भी चाहती हूँ कि अपनी पसंद के सीरियल देखूँ। लेकिन बच्चे चाहते हैं कि जब उनकी पसंद का प्रोग्राम आ रहा हो, तब वे टी.वी. देखते हुए खाना खाएँ। ऐसा भी तो नहीं हो सकता कि मैं ऑफ़िस से आकर खाना बनाकर रख दूँ, ताकि सब साथ बैठकर खाएँ। बच्चे हों या उनके पापा—सब चाहते हैं कि तवे से उतरी रोटी सीधे उनकी प्लेट में पहुँचे। मैं रोटी सेंकते समय कभी खाना परोसते हुए, किसी की नमक की फ़र्माइश पूरी करती तो किसी की अचार-चटनी की। कोई पानी के लिए पुकार रहा होता तो कोई सलाद की फ़र्माइश करता। यानी सब मज़े से बैठकर खाने के साथ-साथ सीरियल का मज़ा ले रहे होते और मैं रसोई और ड्राइंग रूम के बीच पेंडुलम की तरह चक्कर काट रही होती। उनके खाने के कौर हाथ में और आँखें होतीं स्क्रीन पर।

कभी-कभी ऐसा भी होता कि उन्हें न नमक का पता होता, न ही खाने के स्वाद का। बस रोटी खानी है, खा रहे हैं। कभी-कभी तो मैं इतनी थक जाती कि मेरी आँखें भर आतीं।

मैं कह भी देती, "तुम लोग ये सीरियल देखते रहना। मैं रसोई में लुढ़की पड़ी होऊँगी और तुम लोग रोटी का इंतज़ार करते रह जाओगे।" सब सुनी-अनसुनी कर देते।

सुबह बच्चों को तैयार कर स्कूल भेजने, खाना बनाने, ऑफ़िस जाने और आने में ही हर दिन निकल जाता था। रात आठ बजे जो टी.वी. खुलता तो साढ़े ग्यारह या बारह बजे ही बंद होता। कभी-कभी तो मुझे अपनी ज़िन्दगी नीरस लगती। महसूस होता, इस घर की सदस्य नहीं एक कमाऊ नौकरानी हूँ।

घर में जिसका जैसा बस चलता, वह रिमोट दबाता, और दीवान पर लेटकर या सोफ़े पर बैठकर टी.वी. देखता। मैं ऑफ़िस से आने के बाद रसोई में ऐसे जुट जाती कि रात नौ-साढ़े नौ बजे से पहले बाहर नहीं आ पाती थी। टी.वी. के चक्कर में रात को सब देर से सोते। सुबह अलार्म बजते ही मुझे उठना पड़ता। रितेश को जब भी जगाती तो वह 'हाँ', 'हूँ', 'अभी' कहते और करवट बदलकर सो जाते। बच्चे जल्दी-ज़ल्दी नहा-धोकर तैयार होते और मैं ही उनके मुँह में कुछ दे देती तो खा लेते, वर्ना ऐसे ही भाग जाते।

कभी एक की बस छूटती तो कभी दूसरे की। तब रितेश की झुँझलाहट बढ़ जाती कि अब उन्हें स्कूल छोड़ने जाओ।

स्कूल की छुट्टी होने तक कभी पायल का सिरदर्द करने लगता तो कभी अनंत का। रात देर तक जागने के कारण उनकी नींद पूरी नहीं हो पाती और इसीलिए स्कूल में भी अध्यापक की बातें आधी-अधूरी ही समझ पाते।

एक दिन सबका मनपसंद सीरियल आ रहा था। मैं भी कुछ फ़ुर्सत में थी और सबके साथ बैठकर सीरियल का आनंद ले रही थी। तभी दरवाज़े की घंटी बजी। सब एक-दूसरे की तरफ़ देखने लगे। सीरियल छोड़कर दरवाज़ा खोलने कौन जाए? कोई नहीं उठा।

मैंने पायल से कहा, "बेटा, देखो कौन आया है?"

"मम्मी अनंत को कहो ना। इतना अच्छा सीन आ रहा है।" पायल ने मचलते हुए कहा।

अनंत बोला, "मैं ख़ाली बैठकर सीरियल नहीं देख रहा हूँ। साथ में मैथ्स का होमवर्क भी कर रहा हूँ।"

इतनी देर में फिर घंटी बजी और हारकर मुझे ही दरवाज़ा खोलना पड़ा। सोसायटी की मीटिंग के लिए चौकीदार कहने आया था।

यह सुनते ही रितेश बड़बड़ाने लगे, "सारा दिन निकल जाएगा, ये लोग मीटिंग रात को ही करेंगे। कोई प्रोग्राम भी ढंग से नहीं देख सकते। सारा सस्पेंस निकल जाएगा।"

"पापा चले जाओ मीटिंग में। मैं आपको पूरी कहानी सुना दूँगी।" पायल ने कहा।

"नहीं जा रहा मैं।" कहकर रितेश अच्छी तरह पसरकर बैठ गए। इतने में दरवाज़े की घंटी फिर बजी। मैं ही दरवाज़ा खोलने के लिए उठी।

रितेश बोले, "सोसायटी वाले हों तो कह देना मैं घर पर नहीं हूँ।"

मैंने दरवाज़ा खोला तो बच्चों की बुआ आई थी। अंदर आते ही बोलीं, "किसको झूठ बुलवा रहा है?" फिर उनकी नज़र टी.वी. पर पड़ी तो वह भी वहीं बैठकर टी.वी. देखने लगीं। सबके रंग में भंग पड़ गया।

मैं उन्हें पानी दे गई और गैस पर चाय चढ़ा दी। रसोई से ही मैंने पायल को आवाज़ लगाई।

पायल ने अनंत से कहा, "मम्मी बुला रही है। आज तू जा।"

"मैं क्यों जाऊँ? मम्मी ने तो तुम्हें आवाज़ लगाई है।" अनंत बोला।

"कल जब पापा के दोस्त आए थे तो मैं गई थी, अपना सीरियल छोड़कर।" पायल बोली।

इतनी देर में मैं ही चाय-नाश्ता लेकर आ गई। बच्चों की बुआ और दो क़दम आगे निकली। मैंने कहा, "लो दीदी, चाय पीओ।"

"श श श श चुप। बाद में। बहुत अच्छा सीन चल रहा है।" बच्चों की बुआ बोली। मैं तो चुपचाप वहाँ से खिसक ली।

तीन-चार दिन ख़ूब बारिश हुई। हर गली-मोहल्ले में घुटने-घुटने पानी। इतवार आया। सुबह से ही बिजली गई हुई थी। पता चला केबल बैठ गई है। पूरे दिन लाइट नहीं आएगी। पायल तो रोने ही लगी। आज उसके फ़ेवरेट हीरो रितिक की फ़िल्म आनी थी।

मैंने कहा, "चलो, आज कहीं घूमने चलते हैं।"

"हाँ मम्मी, मौसी के यहाँ चलते हैं।" हमने रीना को फ़ोन किया कि हम उसके यहाँ पहुँच रहे हैं। वह तो हैरान हो गई। महीनों की उसकी शिकायत आज हमने दूर कर दी। वहाँ हमने ख़ूब बातें कीं। हँसे, खेले। शाम होते-होते वहाँ से इंडिया गेट आ गए। बच्चों ने तो एन्जॉय किया ही, मुझे भी रूटीन से निजात मिली। खुली हवा में परिवार के साथ हँसना, खाना, बातें करना।

मेरी तो जैसे सारी थकान जाती रही।

रात को घर पहुँचते-पहुँचते बच्चे तो ख़ुश थे ही, मैं भी प्रफुल्लित थी। पायल फ़िल्म के बारे में भूल चुकी थी। रात को सब जल्दी ही सो गए।

अगले दिन सुबह सबको उठाते समय मुझे झींकना नहीं पड़ा। जल्दी सोने से सबकी नींद पूरी हो गई थी। बच्चे समय पर तैयार हो गए। नाश्ता भी ढंग से किया। रितेश बच्चों को बस में चढ़ा आए। फिर हम दोनों ने मुद्दत बाद आधा घंटा बातें कीं।

तीसरे दिन केबल ठीक हो गया। सबका वही रूटीन शुरू हो गया। दो दिन से मेरा फूल जैसा खिला रहनेवाला चेहरा मुरझा गया। शाम होते ही सबके सीरियल और मैं पेंडुलम की तरह रसोई तथा ड्राइंग रूम में झूलने लगी। इस बीमारी का कोई इलाज समझ नहीं आया तो मैंने ख़ुद को क़िस्मत के सहारे छोड़ दिया कि शायद भगवान कभी हम औरतों की भी सुनेगा। □

कहानी

मनजीत कौर भाटिया

मेरा फ़ैसला

मेरे बेटे नीरज का चयन भारतीय प्रशासनिक अधिकारी पद के लिए हो गया। मेरी ख़ुशी का पारावार नहीं था।

नियुक्ति पत्र हाथ में लिए उत्साहित-सा नीरज मेरे कमरे में आया और आगे बढ़कर जब उसने मेरे पाँव छुए तो मैं हतप्रभ-सी उसका चेहरा देखती रही। वैसे तो वह रोज़ ही मेरे पाँव छूता है, लेकिन इस समय नहीं...सुबह घर से निकलते समय। मुझसे मिले बिना, मेरे पाँव छुए बिना वह कभी घर से नहीं निकलता। उसका मानना है कि मेरे आशीर्वाद से ही उसके सब काम अपने आप बन जाते हैं। लेकिन आज इस समय? सुबह तो वह मेरे पाँव छूकर ही घर से गया था...शायद भूल गया होगा। लेकिन नीरज के चेहरे से छलकती ख़ुशी और मेरे दिल की बढ़ती धड़कन धीरे से मेरे कान में कह रही थी कि कोई ख़ुशख़बरी है...।

मैंने प्रश्नसूचक निगाहों से नीरज की ओर देखा। उसने हाथ में पकड़ा नियुक्ति-पत्र मुझे दिखाया, "देखो मम्मी, यह देखो क्या है। आई. ए. एस. अधिकारी पद के लिए मेरा चयन हो गया है। अगले हफ़्ते ही मुझे रिपोर्ट करना है।" कहते हुए वह कसकर मुझसे लिपट गया। यह ख़ुशख़बरी सुनकर पता नहीं क्यों मेरी आँखों के कोर भींग गए। मैंने मन-ही-मन ईश्वर का धन्यवाद किया और नीरज के सिर पर हाथ फेरकर उसे हमेशा आगे बढ़ते रहने का आशीर्वाद दिया।

"मम्मी यहाँ तक भी आपके आशीर्वाद से ही पहुँचा हूँ। अच्छा मम्मी अब मैं चलता हूँ...अपने दोस्तों को भी यह ख़ुशख़बरी सुनाकर आता हूँ...और हाँ पापा को आप फ़ोन कर देना...उनको यह ख़ुशख़बरी आप ही सुनाना...।"

"सुन बेटा मिठाई तो ले जा...।" मैंने उसे आवाज़ लगाई, लेकिन वह वहाँ था ही कहाँ? बाल हिरण-सा कुलाँचे भरता इतनी देर में वह तो पता नहीं कहाँ पहुँच गया था।

नीरज के जाते ही अपनी भींगी आँखें पोंछने के लिए जैसे ही मैंने हाथ बढ़ाया, आँखों से आँसू छलक पड़े। जब ढेर सारी ख़ुशियाँ एक साथ मिलती हैं, तब शायद सबके साथ ऐसा ही होता होगा। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि ख़ुशी में हम इतना भावुक क्यों हो जाते हैं।

'जब ख़ुशी सँभाले न सँभले तो उसे बाँट लेना चाहिए।' यही सोचकर मैंने विनय को फ़ोन मिलाया और झटपट ख़ुशख़बरी सुना दी। विनय बहुत ठहरे हुए इंसान हैं। वे हमारी तरह एकदम उतेजित नहीं होते। उन्होंने मुझे मुबारक़बाद देते हुए यही कहा, "मधु यह सब तुम्हारी मेहनत का फल है। आज मैं और हमारे बच्चे जो कुछ भी हैं, सब तुम्हारे कारण हैं। आई एम प्राउड ऑफ़ यू...सच मुझे तुम पर गर्व है...।"

"विनय, मुझे यह रास्ता भी तो तुम्हीं ने दिखाया था। सच, उस वक़्त अगर तुमने मुझे ज़िम्मेदारियों का अहसास न करवाया होता जो शायद आज यह दिन देखना हमारे नसीब में नहीं होता।"

"अच्छा, अच्छा अब ज़्यादा बातें न बनाओ। नीरज को मेरी ओर से ढेर-सा प्यार और बधाई देना। और हाँ आज शाम को जल्दी आने की कोशिश करूँगा...।"

"मैं इंतज़ार करूँगी।" कहकर मैंने फ़ोन बंद कर दिया और चुपचाप सोफ़े पर आकर बैठ गई। मेरे मन के किसी कोने से आवाज़ आई, 'मधु आज तुम्हारी तपस्या पूरी हो गई। आज तुम एक जनरल मैनेजर की पत्नी ही नहीं, एक डॉक्टर और एक आई. ए. एस. अधिकारी की माँ भी हो। एक औरत को जीवन में और क्या चाहिए...अब तो तुम्हें नौकरी छोड़ने का कोई अफ़सोस नहीं है न।'

"नहीं, बिलकुल नहीं। आज मैं गर्व से सीना तानकर कह सकती हूँ कि मैं एक जनरल मैनेजर की पत्नी ही नहीं, एक डॉक्टर और एक आई. ए. एस. अधिकारी की माँ भी हूँ। अगर उस वक़्त मैंने विनय का कहना मानकर नौकरी न छोड़ी होती तो शायद इन दोनों बच्चों का भविष्य वक़्त के अँधेरों में गुम हो गया होता...।"

विनय को शुरू से ही कामकाजी पत्नी पसंद नहीं थी। विवाह के बाद एक-आध बार उन्होंने मुझे नौकरी छोड़ने के लिए कहा भी, लेकिन मैंने ही तुनककर जवाब दे दिया कि मैं सारा दिन घर में ख़ाली बैठकर क्या करूँगी। विनय को शायद इस जवाब की आशा नहीं थी। मेरा टका-सा जवाब उनके कोमल मन को कहीं आहत कर गया था। लेकिन वे ख़ामोश रहे आगे से कुछ नहीं कहा।

पता नहीं, मेरी परवरिश कैसे माहौल में हुई थी? मेरे मन मस्तिष्क में शुरू से एक ही बात बैठी हुई थी कि नौकरी औरत की बहुत बड़ी ताक़त होती है। नौकरी औरत को आर्थिक स्वतंत्रता देती है। जब-जब भी मैं नौकरी छोड़ने का नाम लेती, मुझे सब यही समझाते कि घर पर बेकार बैठनेवाली औरत की कोई परवाह नहीं करता है। पैसा कमानेवाली औरत की सब इज़्ज़त करते हैं। इसलिए मैंने विनय की बात को कभी भी गंभीरता से नहीं लिया था।

इसी तरह दिन गुज़रते रहे। धीरज का जन्म हुआ। छोटे बच्चे के साथ लंबे समय तक घर पर बँधकर बैठना पड़ा, इसलिए कुछ ही दिनों में मुझे बोरियत-सी होने लगी। मुझे दफ़्तर की याद सताने लगी। विनय शायद नहीं चाहते थे कि मैं अब ऑफ़िस ज्वायन करूँ। उन्हें बुरा न लगे, इसलिए मैंने दो बार तीन-तीन महीने की छुट्टी बढ़वाई। लेकिन जब छुट्टियाँ भी ख़त्म हो गईं तो ऑफ़िस ज्वायन करने के सिवा कोई चारा नहीं था। मैंने पास-पड़ोस में घूमकर धीरज के लिए क्रेच का पता किया। और अपनी ओर से सब इंतज़ाम करने के बाद मैंने विनय को बताया कि मैं कल से ऑफ़िस ज्वायन कर रही हूँ। धीरज के लिए मैंने क्रेच में बातचीत कर इंतज़ाम कर दिया है। इसलिए उन्हें चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है।

विनय को जैसे शॉक-सा लगा। वे शायद इस परिस्थिति के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं थे। उस वक़्त तो वे कुछ नहीं बोले, चुपचाप बाहर चले गए। बाद में दबी ज़बान से केवल इतना ही कहा, “मधु, अब तो तुम्हें खेलने के लिए खिलौना मिल गया है। अब तो तुम घर पर बैठकर बोर नहीं होगी। फिर क्यूँ बेकार में नौकरी का झंझट मोल लेती हो।”

“लेकिन विनय उस नौकरी को पाने के लिए रात-रात जागकर जो मैंने इतनी पढ़ाई-लिखाई की थी...क्या वह सब व्यर्थ जाएगी...।”

मेरी बात को काटते हुए विनय ने जवाब दिया, “मधु यह सब तुम्हारा वहम है। पढ़ाई-लिखाई कभी बेकार नहीं जाती...।”

मैं भी कहाँ हार माननेवाली थी। मैंने कहा कि अगर मुझे घर पर बैठकर रसोई ही सँभालनी थी और बच्चे ही पालने थे तो बेकार ही मैंने पढ़ाई पर इतना समय और पैसा व्यर्थ किया...।

मेरे जवाब से विनय को हैरान हुई, “मधु, यह तुमसे किसने कह दिया कि पढ़ाई-लिखाई सिर्फ़ पैसा कमाने के लिए की जाती है...उसका कोई और उपयोग नहीं है। यह ग़लतफ़हमी तुम्हारे दिमाग़ में कैसे बैठ गई कि उच्च शिक्षिता स्त्री की साथर्कता मोटी-सी तनख़्वाह लाने में है। और यह कौन-सी किताब में लिखा है कि पढ़ी-लिखी औरत को रसोई का काम नहीं करना चाहिए या फिर अपने बच्चे आप नहीं पालने चाहिए, क्रेश या नौकरों के सिर पर छोड़ देने चाहिए। बोलो...जवाब दो...है कोई जवाब तुम्हारे पास इन बातों का...।”

सच में, मेरे पास विनय की बातों का कोई जवाब नहीं था। लेकिन मैं किसी भी हालत में नौकरी छोड़ना नहीं चाहती थी। विनय ने एक बार और मेरी मर्ज़ी के आगे घुटने टेक दिए।

धीरज को क्रेच में डालकर मैंने ऑफ़िस ज्वायन कर लिया। लेकिन अब घर और बाहर की ज़िम्मेदारी सँभालना उतना आसान नहीं था। धीरज की वजह से काम कई गुणा बढ़ गया था और करनेवाली थी सिर्फ़ मैं।...ऐसा नहीं था कि विनय को मुझसे कोई हमदर्दी नहीं थी या वो किसी काम में मेरी मदद नहीं करते थे...दरअसल उन्हें काम करने की आदत ही नहीं थी। वे मेरा हाथ बँटाना तो चाहते थे, लेकिन उन्हें काम करना आता ही नहीं था। और अब यह कोई उम्र नहीं थी उनकी काम सीखने की। फिर भी थोड़ा बहुत जितना भी उनसे बन पड़ता था, करते थे...सुबह जल्दी उठकर दूध उबाल देते, चाय बना देते...धीरज का बैग तैयार कर देते, अपना और मेरा लंच पैक कर देते... थोड़ा बड़ा होने पर धीरज को नहला-धुलाकर तैयार भी कर देते...चुपचाप...बिना किसी शिकवे-शिकायत के।

लेकिन धीरे-धीरे पता नहीं कब एक अजीब-सी चुप्पी ने हम दोनों के बीच पाँव पसार लिए, हमें पता ही नहीं लगा।

घर-बाहर की भाग-दौड़ से मैं भी थककर चूर हो जाती थी। शाम को जब मैं घर लौटती तो इतनी थकी हुई होती कि रसोई में घुसने का मन नहीं होता था। मेरा मूड देखकर अक्सर विनय चुपचाप बाज़ार से ही खाना ले आया करते थे। हाँ, उन्होंने साथ चलकर बाहर खाने के लिए कभी नहीं कहा था। इस ओर भी मेरा ध्यान कभी नहीं गया था। विनय ने कभी किसी बात को लेकर बहस नहीं की थी, इसलिए हमारे बीच तू-तू मैं-मैं होने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

लेकिन अब मुझे महसूस होने लगा था कि हमारे संबंध सामान्य नहीं रहे। प्रेम-रोमांस तो जैसे ख़्वाब बनकर रह गया था। अव्वल तो हमारी बातचीत होती ही नहीं थी, अगर होती भी तो शिकायतों के रूप में कुंठाएँ ही बाहर निकलतीं। एक असहनीय मौन हमारे बीच दीवार बनकर खड़ा हो गया था। और यह दीवार दिन-ब-दिन मज़बूत होती जा रही थी। मैंने इस मौन को तोड़ने की बहुत कोशिश की, लेकिन विनय की ओर से कभी पहल नहीं हुई।

इसी तरह चार वर्ष गुज़र गए। विनय के स्वभाव में कोई बदलाव नहीं आया। अब तो वे हर वक़्त उखड़े-उखड़े से रहने लगे थे। उनका प्रेम-भरा स्पर्श तो दूर की बात है, अब तो उनके दो बोल सुनने के लिए भी मेरे कान तरस जाते थे। हमारे दांपत्य की नींव दरक रही है, यह अहसास तो मुझे बहुत पहले हो गया था, अब तो दरारें प्रत्यक्ष दिखाई देने लगी थीं।

धीरज पाँच वर्ष का होनेवाला है। अब वह क्रेच नहीं जाता था। स्कूल से आने के बाद वह मेरी सहेली वीणा के पास ही रहता था। तीन बजे तो वह स्कूल से ही आता था। छह बजे तक मैं भी आ जाती थी। दो-तीन घंटे की ही बात थी। इसलिए उसे क्रेच में न भेजकर अपनी सहेली वीणा के पास छोड़ दिया।

धीरज बड़ा हो गया है, शायद इसलिए अब वह बहुत अकेला महसूस करता है। कभी-कभी मुझे कहता है, "मम्मी सब बच्चों के भाई-बहन हैं। सिर्फ़ मैं ही अकेला हूँ। मुझे भी एक भैया चाहिए।" अब वह बच्चा नहीं रहा...उसे भी खेलने के लिए, बात करने के लिए एक साथी चाहिए।

अब मुझे भी घर में दूसरे बच्चे की ज़रूरत महसूस होने लगी थी। लेकिन विनय से कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। इससे पहले कि मैं विनय से कोई बात करती, धीरज बीमार रहने लगा। रात-रात भर वह करवटें बदलता रहता, उसे नींद नहीं आती थी। डॉक्टरों ने बताया कि उसे अनिद्रा रोग हो गया है। जब मैंने डॉक्टर से पूछा कि यह रोग क्यूँ होता है। तो उसने छूटते ही मुझसे सवाल किया, "क्या यह बच्चा दिन भर आपके पास रहता है?"

"नहीं, मैं तो नौकरी करती हूँ।"

"हूँ...।" डॉक्टर ने एक लंबी साँस ली और पूछा, "तो फिर किसके पास रहता है? पिछले कुछ दिनों में आपने इसके रहने की जगह बदली है क्या?"

"जी हाँ। पहले यह क्रेच में रहता था। लेकिन अब स्कूल से आने के बाद मेरी एक सहेली के पास रहता है। जब से इसे वहाँ छोड़ा है, तब से ही बीमार रहने लगा है...।"

"ठीक समझा आपने। क्रेच में इसको दूध में अफ़ीम या फिर कोई और नशीली चीज़ देकर घंटों सुला दिया जाता रहा होगा। धीरे-धीरे दिए गए उस मीठे ज़हर का नशा इसकी रगों में इस क़दर रच-बस गया कि उसके बिना इसे नींद नहीं आती। और नींद न आने की वजह से इसका शरीर हर वक़्त थका-थका-सा और सुस्त रहता है।"

"नहीं डॉक्टर साहब, ऐसा नहीं हो सकता। प्लीज़ कह दो कि यह सब झूठ है...।"

लेकिन यह सब झूठ नहीं था। शत-प्रतिशत सच था। मैं स्वयं को अपराधिनी-सी महसूस कर रही थी...अपने पति की अपराधिनी, अपने बच्चे की अपराधिनी...। यह सब क्या हो गया? मैंने तो ऐसा कभी नहीं चाहा था। विनय ने डॉक्टर की पूरी बातचीत ध्यानपूर्वक सुनी थी, लेकिन मेरे सामने कोई प्रतिक्रिया ज़ाहिर नहीं की। घर आकर मैं विनय के सीने से लगकर फूट-फूटकर रो पड़ी। विनय ने प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरकर आश्वासन दिया, "तुम चिन्ता न करो, सब ठीक हो जाएगा।"

"विनय, मुझे माफ़ कर दो। यह सब मेरी ज़िद की वजह से हुआ। ग़लती मेरी है।"

"मधु, इस ग़लती का अहसास तुम्हें बहुत पहले हो जाना चाहिए था।" आज विनय पूरी तरह से मेरी क्लास लेने के मूड में थे। उन्होंने बड़े प्यार से मुझे अपने सामने बिठाया और कहने लगे, "मधु, ज़रा सोचो, आज तक हम दोनों कैसा जीवन जी रहे हैं? क्या यह घर तुम्हें घर-जैसा

लगता है? नहीं न। यह घर-घर नहीं सराय बनकर रह गया है, जहाँ रोज़ रात को दो मुसाफ़िर सोने के लिए आते हैं और सुबह होते ही उठकर चले जाते हैं।"

विनय की बात में एक कड़वा सच छिपा था। फिर भी अनायास ही मेरे मुँह से निकल गया, "यह क्या कह रहे हैं आप?"

"कुछ ग़लत कहा क्या मैंने? कितने दिन हो गए, हम दोनों को साथ-साथ बैठकर खाना खाए हुए? चलो हमारी ज़िन्दगी तो जैसी भी थी कुछ गुज़र गई है, बाक़ी भी किसी तरह गुज़र ही जाएगी। लेकिन ये हमारा बच्चा...पता नहीं किन पापों की सज़ा भुगत रहा है? इसकी माँ के पास इसके लिए वक़्त नहीं है। मधु, मुझे समझ में नहीं आता कि नौकरी से तुम्हें इतना लगाव क्यों है। मैं वादा करता हूँ कि अगर तुम नौकरी छोड़ भी दोगी तो तुम्हें किसी आर्थिक तंगी का सामना नहीं करना पड़ेगा। मेरी तनख़्वाह इतनी कम नहीं है कि मैं अपने परिवार को न पाल सकूँ...।

"तुम्हारी और धीरज की चिन्ता के कारण मैं अभी तक विभागीय परीक्षाएँ भी नहीं दे पाया, वर्ना अब तक तो मैं कब का मैनेजर बन गया होता। अगर तुम नौकरी छोड़कर घर की ज़िम्मेदारी सँभाल लो तो मैं बहुत जल्दी तरक़्क़ी पा लूँगा। कम-से-कम यह घर, घर तो लगेगा, जहाँ शाम को जब मैं घर लौटूँगा तो मुझे मेरी पत्नी मेरा इंतज़ार करती मिलेगी। और अब धीरज को तो तुम्हारी बहुत ज़रूरत है...।" कहते कहते विनय भावुक हो गए। उन्होंने आगे बढ़कर मेरा हाथ थाम लिया और कहने लगे, "मधु, मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं माँगा...आज मुझे निराश नहीं करना...मुझे मेरी खुशियाँ लौटा दो...मेरे बच्चे को बचा लो...मेरे घर को बचा लो...।"

विनय की बातों ने मुझे अंदर तक झकझोर दिया था। लेकिन उनका अंतिम वाक्य नश्तर-सा मेरे सीने में उतर गया। मैंने तड़पकर कहा, "यह तुमने क्या कह दिया विनय? क्या यह घर मेरा घर नहीं है? क्या यह बच्चा मेरा बच्चा नहीं है?"

"अगर तुमने इस घर को अपना समझा होता तो शायद आज यह नौबत ही नहीं आती। हमारे बच्चे की यह हालत न होती...।"

"विनय मैं नौकरी छोड़ रही हूँ।" मैंने उसी पल अपना फैसला सुना दिया। मेरा फ़ैसला सुनकर विनय इतने खुश हुए कि उन्होंने आगे बढ़कर मुझे अपनी बाँहों में भर लिया और प्यार से मेरा माथा चूमकर कहा, "थैंक्यू वेरी मच।"

इस बार मुझे फ़ैसला लेने में देर नहीं लगी, क्योंकि मैंने किसी से सलाह-मश्वरा नहीं किया। जैसे-जैसे सबको मेरे फ़ैसले का पता लगा, बारी-बारी से सबने मुझे अपने-अपने तरीक़े से समझाने का प्रयास किया। लेकिन मैंने किसी की बात नहीं सुनी और त्यागपत्र दे दिया।

मेरा छोटा-सा आशियाना फिर से खुशहाल हो उठा। उजड़े चमन में जैसे फिर बहार आ गई। मेरे और विनय के बीच की दूरियाँ पल भर में ख़त्म हो गईं। घर की सभी चिन्ताओं से मुक्त होकर विनय ने एक के बाद एक कई विभागीय परीक्षाएँ दी...और वे सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ते चले गए...पहले अधिकारी...फिर मैनेजर...और अब जनरल मैनेजर।

धीरज छह वर्ष का था, जब नीरज का जन्म हुआ। घर गृहस्थी और दोनों बच्चों के बीच मैंने अपने आपको इतना व्यस्त लिया था कि मुझे दफ़्तर की कभी याद नहीं आई और समय कब पंख लगाकर उड़ गया, मुझे पता ही नहीं चला।

विनय की एक बात मैंने अपने पल्ले बाँध ली थी कि औरत की उच्च शिक्षा का अर्थ डिग्रियाँ भुनाना नहीं है। मैंने अपने मन में ठान ली थी कि अपनी शिक्षा का उपयोग मैं अपने बच्चों का भविष्य और कैरियर सँवारने के लिए करूँगी।

"अरे भई कहाँ हो। हम सब तुम्हें कब से तुम्हें ढूँढ़ रहे हैं।"

विनय कब आए, मुझे पता ही नहीं लगा? विनय की आवाज़ सुनकर मैं वर्तमान में लौटी।

मैंने एक नज़र विनय और बच्चों की ओर देखा। उनके चेहरे से छलकती खुशी इस बात की गवाह थी कि मेरा फ़ैसला सही था।

❑

देश में विज्ञान का स्तर अंग्रेज़ी के माध्यम से नहीं, हिन्दी के माध्यम से ऊँचा उठ सकता है।

—पुरुषोत्तमदास टंडन

शांता ग्रोवर

चिट्ठी आई है

भारतीय फ़ौज का एक सिपाही अमरुद्दीन था। बड़ा बहादुर और कर्त्तव्यनिष्ठ था। 1999 की बात है एक दिन वह दोस्तों से घिरा बैठा बातें कर रहा था, "दोस्त, मैं एक वर्ष से घर नहीं गया। इस बार मुझे घर अवश्य जाना है, बिटिया का हाई स्कूल में दाख़िला करवाना है। मैंने छुट्टी के लिए दरख़्वास्त दी हुई है, देखो इस बार छुट्टी मंजूर होती है या नहीं।"

"अरे यार! फ़िक्र मत कर। तुम्हारी छुट्टी अवश्य मंजूर होगी। कर्नल तुम्हारी कर्त्तव्यनिष्ठा से बहुत खुश हैं, तुम्हें घर जाने की इजाज़त अवश्य देंगे।" दोस्त बोला।

कुछ दिन बाद जब अमरुद्दीन को छुट्टी मंजूर होने की सूचना मिली तो वह खुशी से नाचने लगा। तुरंत सामान समेट, ट्रेन पकड़ वह मैनपुरी अपने घर पहुँच गया।

एक वर्ष बाद अब्बा को अपने बीच पाकर बच्चे खुशी से उछलने लगे। अमरुद्दीन भी उन्हें देखकर अपनी सारी थकावट भूल गया। झट ट्रंक खोलकर उनके लिए लाया सामान दिखाने लगा। दोनों भाई-बहन अपने लिए कपड़े और खिलौने पाकर बहुत खुश हुए। बेटा अज़हर बोला, "अब मैं भी बड़ा होकर फ़ौजी बनूँगा।" और खिलौना बंदूक़ से बहन की ओर निशाना साधते हुए बोला "दुश्मन को ढाँय-ढाँय मार दूँगा।"

अमरुद्दीन हँसते हुए बोला, "हाँ, ठीक है। पहले पढ़ाई तो पूरी कर लो, फिर फ़ौज में भरती होना।"

तभी अमरुद्दीन की पत्नी कमरे में आई और बोली "चलो, तुम दोनों भाई-बहन दूसरे कमरे में जाकर पढ़ो। तुम्हारे अब्बा थके हुए होंगे। उन्हें आराम करने दो।"

बच्चों के जाने के बाद अमरुद्दीन पत्नी की ओर मुख़ातिब हुए, "कहो बेगम मज़े में तो हो।"

"आपके बिना क्या मेरी ज़िंदगी मज़े में कट सकती है? मैं तो बच्चों के बीच अपनी विरह-व्यथा भूल जाती हूँ। आप सुनाइए, आपकी तनहा ज़िन्दगी कैसे बीतती है?"

"बहुत मज़े में बीतती है।" पत्नी को चिढ़ाता हुआ अमरुद्दीन बोला।

"इतने दुबले हो गए हैं आप और कहते हैं कि मज़े में रह रहा हूँ।" पत्नी शिकायती लहजे में बोली।

"क्या आज तुम्हारा बातों से ही मेरा पेट भरने का इरादा है।" अमरुद्दीन मुस्कुराते हुए बोला।

"अरे नहीं, नहीं! अभी खाना परोसती हूँ।" यह कहकर उसकी पत्नी रसोई में चली गई।

अभी अमरुद्दीन को घर आए दस दिन ही बीते थे कि फ़ौज से तार आ गया—"ड्यूटी पर तुरंत पहुँचो।" तार पाते ही पत्नी रोने लगी। वह समझ गई थी कि कहीं कुछ गड़बड़ है। पूछने लगी, "सच-सच बताइए। क्या कहीं युद्ध छिड़ गया है?"

"मुझे कुछ मालूम तो नहीं है, लेकिन पाकिस्तान वाले कश्मीर की सीमा पर अक्सर कुछ गड़बड़ी करते रहते हैं। हो सकता है, वहीं पर हमारी रेजिमेंट को भेजने का फ़ैसला किया गया हो।" अमरुद्दीन बोला।

"एक साल बाद आपको घर आने की छुट्टी मिली थी और वह भी आपकी रद्द हो गई।" पत्नी रोते हुए बोली।

"देखो फ़ौज की नौकरी में तो ऐसा ही होता है। फ़ौजी को तो हर समय युद्ध के लिए तैयार रहना पड़ता है। चलो अब उदास मत होओ। मैं जल्द ही फिर छुट्टी लेकर आ जाऊँगा।" अमरुद्दीन पत्नी को दिलासा देते हुए बोला।

अमरुद्दीन ने सामान बाँधा और उसी दिन गाड़ी पकड़कर वापिस अपनी ड्यूटी पर आ गया। दो-चार दिनों में उन्हें हुक्म मिला, "कारगिल की तरफ़ कूच कर जाओ।"

अमरुद्दीन अपनी रेजिमेंट के साथ कारगिल पहुँच गया। वहाँ जाकर उसे पता चला कि पाकिस्तान के सैनिकों ने कारगिल की ऊँची पहाड़ियाँ और मौसम का फ़ायदा उठाकर वहाँ स्थित सीमा-रेखा पार कर ली है। वे पहाड़ियों की गुफाओं में छिपकर

बैठ गए हैं और गोलाबारी कर रहे हैं। चूँकि सर्दियों में ऊँची-ऊँची पहाड़ियों पर तापमान शून्य डिग्री से भी काफ़ी नीचे होता है, इसलिए वहाँ से सैनिकों को नीचे बुला लिया जाता है। इसी रास्ते से पाकिस्तानी भारत में घुसकर तिब्बत-लेह मार्ग पर आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे थे। वे उस मार्ग पर अधिकार करना चाहते थे, क्योंकि लेह पूरे भारत से केवल इसी मार्ग द्वारा जुड़ा हुआ है।

अमरुद्दीन की पूरी रेजिमेंट को 'जुबेर हिल्स' पर चढ़ाई करने का हुक्म मिला। ऊपर पहाड़ी पर पाकिस्तानी सैनिक बंदूक़ें ताने खड़े थे और नीचे से भारतीय सैनिक बहादुरी से चढ़ाई कर रहे थे। वे चट्टानों की ओट लेकर ऊपर चढ़ रहे थे, लेकिन फिर भी अमरुद्दीन के कई साथी उनकी गोली का निशाना बन गए। रात को दोनों तरफ़ से लड़ाई बंद हो जाती थी। सैनिक जितनी चढ़ाई कर चुके होते थे। वहीं रात में किसी चट्टान की ओर में सुस्ताने लगते थे।

अमरुद्दीन अपने साथियों की मौत से बहुत उदास था। नींद उसकी आँखों से कोसों दूर थी। उसने जेब से टार्च और काग़ज़-पेन निकाला। घर में बेटी को वह चिट्ठी लिखने लगा।

दिनांक 26 जून 1999
स्थान : जुबेर हिल्स, कारगिल

प्रिय बेटी मुबीना,

आशा है, तुम अपनी अम्मी और अज़हर के साथ सकुशल होगी। तुम हाईस्कूल में दाख़िला लेने के लिए पड़ोसी चाचा ज़ुहरुद्दीन की सहायता ले लेना। मुझे तो अभी मोर्चे पर दो-तीन महीने लग जाएँगे। लड़ाई ख़त्म भी हो गई तो भी हमें जल्दी छुट्टी नहीं मिलेगी।

बिटिया, यहाँ पल-पल पर हमें मौत का सामना करना पड़ रहा है। दुश्मन की गोलियों की बौछार के बीच साथियों की लाशों को लाँघकर हम पहाड़ियों पर चढ़ाई कर रहे हैं। आशा है, हम जल्दी ही यमराज़ के सीने को चीरकर, दुश्मनों को मुँहतोड़ जवाब देकर अपनी चोटी पर फिर अधिकार कर लेंगे।

अपनी अम्मी और अज़हर को अब तुम्हें ही सँभालना है।

तुम्हारा अब्बू
अमरुद्दीन

चिट्ठी समाप्त करते ही अमरुद्दीन की आँख से आँसू की बूँदें टपक पड़ीं, जो चिट्ठी को बंद करते हुए उस पर जा पड़ीं। आँसू पोंछकर उसने चिट्ठी लिफ़ाफ़े में डालकर पता लिखा और हरकारे को दे दिया।

कई दिन ऐसे ही लुकछिप करते हुए लड़ाई चलती रही। अब मंज़िल बहुत क़रीब आ गई, तो अमरुद्दीन और उसके बचे हुए साथियों ने रात को भी चढ़ाई करने का निश्चय कर लिया। वे अँधेरे में केवल चाँद की रोशनी में चुपके-चुपके आगे बढ़ने लगे। रात बीत गई। अगला पूरा दिन भी, लेकिन वे चढ़ाई करते रहे और 72 घंटे लगातार चढ़ाई कर वे चोटी पर पहुँच गए। दुश्मन सामने था। वे ढाँय-ढाँय गोलियाँ बरसाने लगे। अमरुद्दीन के सीने में चार गोलियाँ लगी। लेकिन तब भी उसने राइफ़ल नहीं छोड़ी और दो पाक-सैनिकों को मार गिराया। उसके साथियों ने अन्य सैनिकों पर क़ाबू पा लिया और चोटी पर अपना झंडा फहरा दिया। झंडे की तरफ़ देखते-देखते अमरुद्दीन की आँखें बंद हो गई।

10 जुलाई को मुबीना बहुत ख़ुश थी। आज उसके अब्बा का पत्र जो आया था। उनकी कुशलता का समाचार पाकर वह फूली न समा रही थी। उसकी अम्मी और अज़हर भी बहुत ख़ुश थे। वे दो-तीन घंटे अब्बू की ही बातें करते रहें। तभी अम्मी मुबीना से बोली, "बिटिया, जाकर चाचा को बताओ कि अब्बू का पत्र आया है। वे हर समय तुम्हारे अब्बू के बारे में पूछते रहते हैं।"

"जी अम्मी, उनसे अपने दाख़िले की बात भी कर लूँगी। "यह कहकर मुबीना ने दुपट्टा ओढ़ा और चाचा के घर की ओर चल दी।

सड़क पर कुछ दूरी पर उसने सेना के जवानों को ताबूत उठाकर आते देखा। वह सोच में पड़ गई कि यह क्या माज़रा है? उसे कुछ घबराहट होने लगी, लेकिन चाचा का घर आ गया था। वह गेट खोलकर अंदर चली गई। उसने जल्दी से चाचा को चिट्ठी की बात बताई और उल्टे पैर वापिस बाहर निकल आई।

'यह क्या!' उसका दिल धक से रह गया। वे जवान चाचा के घर से आगे निकल उसी के घर की ओर बढ़ रहे थे।

वह भागकर अपने घर गई। तब तक जवान भी पहुँच गए थे। उन्होंने मुबीना से अपनी माँ को बुलाने को कहा। मुबीना घबराई-सी माँ को बुला लाई। जवानों ने ताबूत को माँ के आगे रख दिया और नम्र स्वर में बोले, "माँ जी, आपके पति वीरगति को प्राप्त हो गए हैं?"

मुबीना की माँ चीख़ मारकर बेहोश हो गई। खुद मुबीना की हालत पागलों सी हो गई। वह भागकर अंदर गई और चिट्ठी उठा लाई। जवानों को चिट्ठी दिखाकर ज़ोर-ज़ोर से बोले लगी, "आप झूठ बोल रहे हैं, मेरे अब्बू का तो चार घंटे पहले ही पत्र आया है कि वे भले-चंगे हैं, फिर आप कैसे कह सकते हैं कि वे वीरगति को प्राप्त हो गए हैं। आपने ग़लत सुना होगा? आपने किसी और के घर जाना होगा?"

"नहीं बेटा, चिट्ठी तो उन्होंने बहुत दिन पहले लिखी होगी। वह तुम तक पहुँची आज है।"

मुबीना चिट्ठी को कलेजे-से लगाए वहीं बैठ गई। रोते-रोते बोली, "अब्बू, आप हमें छोड़कर चले गए, लेकिन मुझे आप पर गर्व है। मैं बड़े स्कूल में दाख़िला लूँगी और पढ़-लिखकर फ़ौज में जाऊँगी और दुश्मनों के छक्के छुड़ा दूँगी।"

जवानों ने मुबीना की पीठ थपथपा दी। मुबीना अपने आँसू पोंछ अपनी पत्थर बनी माँ और भाई को सँभालने में लग गई। □

लोककथा

के.जी. रामलिंगम

राजा कमाल

एक दिन राजा कमालसेन ने अपने मंत्री से कहा, "हे मंत्रीजी, मुझे एक इच्छा हो रही है—दुनिया में अव तक कुछ फलों को मैंने देखा नहीं है। उन फलों को जो भी व्यक्ति लेकर आएगा, उसे अच्छा इनाम देने की घोषणा करता हूँ।"

मंत्री ने सेवक को कहा, "ऐ सेवक, तुम राजा की इस घोषणा को प्रजा के पास पहुँचा दो। घोषणा यह है कि इस दुनिया में राजा ने अब तक जिस फल को नहीं देखा है, उस फल को दिखानेवाले को वह अच्छा-से-अच्छा इनाम देंगे—यदि वह फल वह देख चुके हैं तो, उस फल को लेके आनेवाले के मुँह में उसी फल को ज़वरदस्ती ठूँस दिया जाएगा।"

राजा के सेवक ने यह घोषणा प्रजा तक पहुँचा दी। घोषणा को सुनकर लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के फल लेकर राजा के पास पहुँचे।

राजा के पास लालू जामुन लेकर पहुँचा—राजा ने उसे उसके मुँह पर फेंक दिया। श्यामू एक नींबू लेकर राजा के पास पहुँचा—राजा ने नींबू को उसके मुँह में रखकर दबा दिया। अशोक संतरा लेकर गया—उसका भी वही अंज़ाम हुआ। भीम केला लेकर गया तो राजा ने छिलका समेत केले को उसके मुँह में ठूँस दिया। नंदू अमरूद लेकर पहुँचा तो उसका भी वही हाल हुआ। इस तरह लोग अपने-अपने पसंद को फलों को राजा के सामने प्रस्तुत करते थे, पर सभी निराश होकर वापस लौटते थे।

कुछ दिन बीत गए। राम राजा के पास अनानास लेकर पहुँचा। राजा ने अपने सेवक से अनानास को राम के मुँह में ठूँसने को कहा। अनानास लेकर राम के पास गया और पूरं अनानास उसके मुँह में रखकर ठूँसने लगा। राम के मुँह से ख़ून निकलने लगा, पर राम हँसने लगा—ज़ोर-ज़ोर से। सेवक ने एक पल रुककर राम से पूछा पड़ा, "हे राम कितना ख़ून बह रहा है। फिर भी तुम क्यों हँस रहे हो?"

राम ने सेवक से कहा, "हे मूर्ख राजा के मूर्ख सेवक! देखो वहाँ बाहरवाले दरवाज़े की ओर। राजा से कहो कि वहाँ एक प्रजा-निवासी कटहल का फल लेकर खड़ा है।"

सेवक ने राजा को राम के अनानास तथा उस बाहरवाले प्रजानिवासी के कटहल के फल की सूचना राजा को दी।

राम ने राजा से कहा, "आपमें दिमाग़ नाम की कोई चीज़ नहीं है! आपको ज्ञान नहीं है, क्योंकि आप तो हमेशा अपने चमचों के कथन पर राज करते हो! आप तो अपना दिमाग़ इस्तेमाल करते ही नहीं हो! यथा राजा तथा प्रजा!" □

हरीश सिंह कंडारी

इश्क़ नहीं आसां...

कभी-कभी आदमी के शौक़ या इच्छाएँ ऐसी हास्यापद स्थितियाँ पैदा कर देती हैं कि भुलाए नहीं भूलतीं। सोलह साल से बीस साल की उम्र का दौर तो मन को हमेशा गुदगुदाता रहता है। इस उम्र में एक तो जवानी का शुभारंभ और विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण और उत्सुकता एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

उम्र के इस पड़ाव में हम भी अपने को कुछ कम स्मार्ट और होशियार नहीं समझते थे। अगर कभी ग़लती से भी कोई लड़की हमें देखकर मुस्करा देती तो हम अपने को शहँशाह और रॉबिन हुड से कम नहीं समझते थे। यदि कभी किसी लड़की ने बात ही कर ली तो बल्ले-बल्ले और यूँ लगता था, मानों दुनियाँ मेरी मुट्ठी में हो। बेशक वो लड़की हमसे समय या फिर कोई रास्ता ही पूछ ले।

उसी दौर में कॉलेज के ज़माने में हम पढ़ाई में ठीक-ठाक थे और खेलों में भी शामिल रहते थे। इसलिए थोड़ा-बहुत नाम था, स्वाभाविक रूप से कुछेक लड़कियों का रवैया भी हमारे प्रति सकारात्मक ही था। हमारे साथ ही एक लड़की पढ़ती थी—निशा—एकदम बिंदास और उन्मुक्त विचारों वाली, जोकि हमारी मित्र मंडली की एकमात्र साथी थी। मज़े की बात तो यह कि हम सभी लड़कों को ये लगता था कि निशा उसके प्रति लगाव रखती है। हम सभी उसे रिझाने की भरपूर कोशिशें किया करते थे।

एक बार किसी कारणवश, निशा परीक्षाओं से एक महीने पहले कॉलेज नहीं आ सकी। हम सभी बेचैन हो गए, लेकिन मजबूर थे। समाज का प्रतिबंधित दौर था। जब वह आई तो सभी खिल उठे और उसे एकदम घेर लिया और अपने-अपने ढंग से पूछताछ करने लगे। जब सभी साथी इधर-उधर हो गए तो निशा ने मेरी तरफ़ देखा और कहने लगी—"अनिल, मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ।" मुझे तो सहसा विश्वास ही नहीं हुआ, मन बल्लियों उछलने लगा। क़िस्मत से उस समय जेब में भी 100-100 रुपये के दो नोट पड़े थे।

मैंने सहज होते हुए उससे कहा कि चलो कहीं बाहर चलकर बात करते हैं। क्लास छोड़कर हम एक रेस्टोरेंट में जा पहुँचे। मैंने एक-एक कोल्ड ड्रिंक्स और चाउमीन का ऑर्डर दिया। फिर मैंने बड़ी अदा से उससे पूछा, "निशा, कहो क्या बात है? क्यों परेशान-सी हो?"

उसने लाचारी जताते हुए सिर झुकाया, फिर बोली, "अनिल, मेरी मदद केवल तुम ही कर सकते हो।"

यह सुनते ही मेरे दिलो-दिमाग़ में एक नशा-सा छा गया, दिल की धड़कनें बढ़-सी गई। मैं उसका हाथ पकड़ना चाहता था, पर हिम्मत नहीं हुई, सर्दी के मौसम में भी पसीना आ गया। लेकिन किसी तरह से अपने आपको नियंत्रित किया और बड़े भोलेपन से उससे पूछा, "बताओ निशा, मैं तुम्हारे किस काम आ सकता हूँ?"

अचानक उसने लपककर मेरे हाथ को थाम लिया, तो मेरे दिल की धड़कनें भी बंद-सी हो गईं, आँखों के सामने अँधेरा-सा छा गया। निशा बोली, "प्लीज़ अनिल, अपने सारे नोट्स मुझे दे दो, पेपर सिर पर हैं। अगर तुम मेरी मदद नहीं करोगे तो मैं फ़ेल हो जाऊँगी।"

यह सुनते ही मैं भी राजा बलि और कर्ण की तरह दानवीर बन गया। आनन-फ़ानन में अपने सारे नोट्स एक झटके में निशा को सौंपते हुए कहा, "इन्हें तुम ही रखो, मैं अपना देख लूँगा।" वह हल्के से मुस्कराई झट से सारे नोट्स लपकते हुए रेस्टोरेंट से निकल गई और मैं काउंटर पर बिल चुकाने पहुँचा।

परीक्षाएँ हुई तथा रिजल्ट घोषित हुआ तो हम तो चारों खाने चित थे, बस किसी तरह पास हो सके, लेकिन निशा सेकिण्ड पोज़िशन लेकर पास हुई थी। उसे बधाइयाँ देनेवालों का ताँता लगा हुआ था और हम एक कोने में चुपचाप उसे खिलखिलाते देख रहे थे। वह मुझे देखकर भी नहीं देख रही थी और एक दिन तो हम पर वज्रपात ही हो गया, जब निशा कॉलेज के सबसे बदनाम लड़के की मोटरसाइकिल पर बैठी नज़र आई। हम भी समझ चुके थे कि यह इश्क़ अपने बस का रोग नहीं।

❑

अरुण दे

पेरेक

पहलेपहल जिस दिन पेरेक से मेरा परिचय हुआ, उस दिन मैं जानता नहीं था कि पेरेक एक पुर्तगाली शब्द है। आज जानकर भी मुझे कुछ फ़ायदा हुआ, ऐसी बात नहीं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था न—'जानार लाभ, से तो जानारइ लाभ' अर्थात् जानने का फ़ायदा, वह तो जानने का ही फ़ायदा है। ख़ैर, फ़ायदे-बेफ़ायदे की बात को छोड़ें। पेरेक पर ही चर्चा चलें। मेरे स्वर्गवासी पिता का नाम था तारक, जिसका अर्थ है तारण या उद्धार करनेवाला। कोई-कोई उस तारक नाम को तोड़-मोड़कर पेरेक कहकर पुकारता था। सुनकर मेरा ख़ून खौल उठता था। पर मैं इसका विरोध नहीं कर सकता था। क्योंकि विरोधिता की भाषा मुझे ज्ञात नहीं थी। विरोधिता की एक भाषा होती है, एक ढंग भी होता है। जी-जान से उस ढंग को सीखना पड़ता है, जानना पड़ता है, उसे ज़ब्त करना पड़ता है। हाँ, पेरेक (कील) पर चर्चा चल रही थी। उसी प्रसंग पर आऊँ।

हमारे घर पलंग के नीचे एक पुराने टीन के डिब्बे में पेरेक यानी कीलें थीं। मुझे याद है एक बार हम किराए का एक घर बदलकर बहूबाज़ार से गोबरडांगा में दूसरे घर गए थे। बहुत दिन तक घर के पलंग के पाए आदि सब खुले हुए थे। एक दिन पिताजी दफ़्तर नहीं गए। उस दिन उन्होंने उस पलंग को सालकर खड़ा किया। हथौड़ी, कीलें और दूसरे ज़रूरी औज़ार सभी मौजूद थे, और मौजूद था मैं। मेरी उम्र कम थी। मैं, पिता जी का मददगार था। उनके निर्देशानुसार मैं उन्हें कीलें, टीन का डिब्बा, हथौड़ी सभी कुछ हाथोंहाथ बढ़ा, देकर उनका हाथ बँटा रहा था। संभवतः उसी दिन कीलों से मेरा पहला परिचय हुआ।

कीलें क़िस्म-क़िस्म की होती हैं—छोटी, बड़ी, मझली, पीतल की, लोहे की। कीलों के क़िस्म-क़िस्म के इस्तेमाल भी हैं। चप्पल या जूते में जिस कील का उपयोग होता है, उसे दीवार पर ठोका नहीं जा सकता। दीवार पर कील ठोककर चित्र या कैलेंडर नहीं टाँगा, संसार में ऐसा कोई है क्या कहीं? एक स्वगत कथन के रूप में मैं यहाँ यह बता देना चाहता हूँ कि नई दीवार पर कील ठोकने का एकदम मेरा मन नहीं करता। मुझे क्रूशविद्ध यीशु की याद आ जाती है। इस कील को लेकर मैंने एक बार एक कहानी भी लिखी थी। वह इस प्रकार है—

चप्पल में एक बार एक कील उभड़कर बहुत तंग कर रही थी। कैसे उससे बचा जाए। कोलकाता शहर, दोपहर के समय, सुनसान रास्ता भाँय-भाँय कर रहा था। कील की चुभन की चोट सहते-सहते लंगड़ाते लंगड़ाते मैं रास्ते पर चल रहा था और कील को कोस रहा था। अचानक एक आदमी गोया ज़मीन फोड़कर आ धमका। वह हुँकार कर उठा—"अपने पास जो कुछ भी है दे दो, वर्ना...।" डर से मेरे हाथ-पाँव फूल गए। अचानक एक तिकड़म सूझा। उस राहजन से मैंने दस्तबस्ता अर्ज किया—"भाई साहब, मेहरबानी करके मुझे एक लमहे की मुहलत दीजिए, ज़रा सब्र कीजिए, पहले मुझे अपनी चप्पल की कमबख़्त कील को उखाड़ फेंकने दीजिए। वह आदमी खड़ा रहा मैं झुककर कील को खींचने लगा। थोड़ी देर बाद वह उखड़ आया। उसे हाथ में थामकर मैं तनकर खड़ा हो गया और चट से उस कील को उस लुटेरे की दाहिनी आँख में पूरा-का-पूरा भोंक दिया। 'अरे, बाप रे' चिचियाकर वह आदमी रास्ते पर ही उलटकर तड़फड़ाने लगा। मैं चप्पल को हाथ में उठाए पलक मारते ही नौ दो ग्यारह हो गया।

मैंने देखा कि पंडाल बनानेवाले मज़दूर अपने मुँह के भीतर बहुत सारे कील भर लेते हैं और बाँस पर चढ़कर कपड़ों में ठकाठक कीलें ठोंकते जाते हैं। मुँह से एक-एक कील निकालते हैं और बाँस पर ठोंकते हैं। देखकर मैं दंग रह जाता हूँ। भूल से अगर एक भी कील गले के भीतर चली जाए तो क्या होगा। पेट पालने के लिए मनुष्य को कितना कुछ करना पड़ता है।

किसने इस कील की ईजाद की? इतिहास में उसका नाम नदारद है। अगर उसके नाम का पता चलता तो कितना अच्छा होता!

अच्छा, इस पर एक शोध की जाए तो कैसा हो? ◻

बाङ्ला से अनुवाद

ननी शूर

नीलम राजपूत

पश्चिम में बॉलीवुड संगीत

पिछले अमेरिका प्रवास के दौरान वहाँ पर बहुत से सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का हिस्सा बनने का अवसर मिला। सांस्कृतिक मेले न्यूयार्क की संस्कृति का अभिन्न अंग बनते जा रहे हैं। प्रवासी भारतीयों ने मानों न्यूयार्क में एक 'मिनी इंडिया' बसा लिया है। प्रौढ़ एवं युवा पीढ़ी में तो भारतीय संस्कृति के प्रचार और प्रसार को लेकर एक उत्साह रहता ही है और वे इसका कोई अवसर गँवाते नहीं हैं, साथ ही बाल्यावस्था से ही यह आकर्षण कैसे हो जाता है, इसका बहुत ही मज़ेदार उदाहरण देखने को मिला।

मेरी भतीजी के ग्रेजुएशन के अवसर पर स्कूल की तरफ़ से पूरा परिवार आमंत्रित था। (नर्सरी कक्षा से कक्षा एक में जाने को भी वहाँ ग्रेजुएशन कहते है!) सप्ताह भर पहले ही सब तैयारियाँ शुरू हो गईं। पूरे परिवार में इस कार्यक्रम को लेकर बहुत उत्साह था।

नियत समय पर स्कूल पहुँचने पर हमने अपना-अपना स्थान ग्रहण किया तथा मुख्य अतिथि आदि के भाषण के बाद शुरू हुआ रंगारंग कार्यक्रम। पश्चिमी धुनों पर कई गाने गाए गए तथा छोटे-छोटे नाटक इत्यादि भी बच्चों द्वारा प्रस्तुत किए गए। फिर बारी आई विभिन्न देशों से आए बच्चों द्वारा अपने-अपने देश की झाँकी प्रस्तुत करने की। चीन, पाकिस्तान, बाङ्ग्लादेश, हाँग-काँग के बाद बारी थी भारत की।

पहले भारत के राष्ट्रगान का सस्वर गान किया गया, उसके पश्चात् विभिन्न राज्यों की सांस्कृतिक झलकियाँ पेश की नन्हें-नन्हें बच्चों ने। नर्सरी कक्षा की अध्यापिका ने उसके बाद घोषणा की कि बच्चे बॉलीवुड में बनी फ़िल्मों की धुनों पर नृत्य प्रस्तुति कर रहे हैं। दर्शकों में भी जो इच्छुक हों, वे स्टेज पर आएँ और साथ दें।

विभिन्न फ़िल्मी गीतों पर नृत्य शुरू हुआ तथा झिझकते हुए कुछ भारतीय अभिभावक मंच पर गए। वे असल में अपने बच्चों का उत्साह बढ़ाने के साथ-साथ अपने पाँव थिरकाने का यह अवसर गँवाना नहीं चाहते थे। धीरे-धीरे समाँ बँधता जा रहा था और यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि दर्शकों के पाँव भी अनायास ही थिरक रहे हैं। तीन-चार प्रसिद्ध गानों के बाद बारी आई फ़िल्म 'कभी ख़ुशी कभी ग़म' के गानों की। मानों दर्शकों में अतिरिक्त उत्साह का प्रवाह ही हो गया।

'कह दो ना-कह दो ना, यू आर माई सोनिया' गाने के शुरू होते तो जैसे नृत्य करनेवालों की होड़ लग गई। सभी विदेशी भी उसमें सम्मिलित हो गए। गाना ख़त्म होते ही 'once more' का शोर मच गया। फिर तो यह सिलसिला जो शुरू हुआ तो दस बार 'Once more' हो गया। आयोजक और विद्यालय के अधिकारीगण हैरान और परेशान नज़र आने लगे। पर फिर खुद भी आयोजक मंच पर नृत्य में शामिल हो गए। क्षेत्रीय अधिकारी, जिलाधिकारी और शिक्षा विभाग के अन्य अमेरिकी अधिकारी भी अपने को रोकने में असमर्थ थे।

यह सिलसिला लगभग दो घंटे चलता रहा। अंत में आयोजकों ने इस आश्वासन के साथ कि इस तरह के आयोजन तो हम करते ही रहते हैं, परंतु भारतीय संगीत का जो आनंद आज हमने उठाया है, भविष्य में भी इसी प्रकार उठाते रहेंगे, कार्यक्रम की समाप्ति की घोषणा की। विदेश में भारतीयता के रंग में सबको रँगा देखकर हृदय भावविभोर हो उठा। एक नई स्फूर्ति की लहर के साथ सबने घर लौटना शुरू कर दिया।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना नहीं है, वह तो स्वाभाविक रूप से राष्ट्रभाषा है।

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

अनुस्मरण

राज सूरी

सासू माँ का स्नेह

सुबह के 5.30 बजे थे, उसी समय अचानक दीदी ने मुझे आवाज़ लगाई, "नीटू, जल्दी आओ, देखो, मम्मी बोल नहीं रहीं। इनकी तो नब्ज़ भी काम नहीं कर रही और साँस भी नहीं चल रही।"

"दीदी, आप तो स्वयं डॉक्टर है, फिर यह कैसे?"

"मम्मी नहीं रही।" मेरी ननद ने दुबारा कहा।

मैंने नाराज़ होते हुए कहा, "प्लीज़ ऐसा न कहें।" जैसे उनसे ज़्यादा वह मेरी माँ हों।

मैं उनका जवाब सुने बग़ैर पागलों की तरह सड़क पर भागी। किसी डॉक्टर को बुला लाने के लिए, शायद वह मम्मी को बचाने के लिए कुछ कर सके। कुछ समझ नहीं आ रहा था।

बहुत हाथ-पैर मारने के बाद एक डॉक्टर घर पर आए।

उन्होंने भी वही कहा, जो दीदी ने कहा था। यह सुनते ही सब पागलों की तरह रोने लगे। इतनी जल्दी चली जाएँगी, कभी सोचा नहीं था।

मेरी आँखों के आगे अठारह साल मानों पल में चलचित्र की तरह गुज़र गए, जब मैं इस घर में बहू बनकर आई थी। वह शांत सद्भाव, दया की मूर्ति। मुझे तो विश्वास ही नहीं हुआ कि वह मेरी सासू माँ है? सास भी इतनी अच्छी होती है, कभी भी हम दोनों के बीच कोई मनमुटाव कहा-सुनी नहीं हुई। उन्होंने मुझे हमेशा लक्ष्मी समझा और माना भी वैसी ही। पर आज वह नहीं रही। सब मुछ पलभर में ख़त्म हो गया।

रोते-रोते दीदी बोली, "सबको बता दो और तुम ड्राइंगरूम ख़ाली करवा लो।" बिटिया तो हैरान-परेशान हो गई कि मेरी दादी को क्या हो गया, क्योंकि दादी तो कणिका की जान थी। जब-जब दादी बीमार होती तो बच्चों की तरह उनका ध्यान रखना उन्हें खाना और दवाई खिलाना। बहुत प्यार करती थी वह अपनी दादी से। पति राकेश जी तो मानों जड़ हो गए। सबको हमारी मेड सोना बार-बार पूछती "क्या हुआ, यह कैसे हो सकता है। हमारी दादी नहीं जा सकती।"

सबको सँभालने वाली केवल दीदी थी, जो कभी खुद रो लेती और कभी बड़े प्यार से समझाती, "मम्मी को एक दिन तो जाना ही था। बहुत शांति से गई हैं। उन्हें पूरी रात कोई तकलीफ़ नहीं थी। मैं तो उनके साथ सोई। पूरी रात में केवल एक-दो बार करवट बदली। सिर्फ़ ईश्वर का नाम ही उनके मुख पर था।"

दया और प्यार की जीती-जागती मूर्ति थीं वह। रोज़ सुबह चार बजे उठ जाना, इतने सालों में कभी नहीं देखा कि घर में भगवान के आगे जोत न जगी हो। कितनी भी बीमार हों, नियम से उठना, पूजा करना। फिर रोज़ लस्सी बनातीं, मक्खन निकालतीं। हम दोनों में ख़ूब बातें होतीं। शाम को जब मैं घर आती तो सीधे उनके कमरे में और उनका इतना कहना, "आ गया मेरा भगवान। यह आती है तो मैं बिलकुल ठीक हो जाती हूँ।" इतना सुनते ही मेरी सारे दिन की थकान फुर्र हो जाती, मैं उनसे हर तरह का हँसी-मज़ाक़ कर लेती, कभी-कभी तो बच्चों की तरह उनके गले लग जातीं। वह तो केवल हँसती रहतीं, बहुत प्यार करतीं और गाल खींच लेतीं, हर पल ढेर सारे आशीर्वाद देतीं। मेरे बच्चे कहाँ पल कर बड़े हो गए, मुझे पता ही नहीं चला। वह किसी को भी कुछ कहने नहीं देती थीं। बेटे राघव के साथ तो हमेशा लूडो, ताश, कैरमबोर्ड और जो भी वह कहता, सब खेलतीं, बच्चों के साथ बच्चा और बड़ों के साथ बड़ी। बच्चे उनकी और वे बच्चों की जान थी।

मैं उनसे हमेशा यही कहती, "माता जी लड़ेंगे हँसेगे, पर रहूँगी हमेशा आपके साथ।" पर आज वो साथ ख़त्म हो गया, घर सूना-सूना हो गया। मैं भी बिलकुल ख़ाली हो गई। मैं उनके साथ कितनी व्यस्त रहती थी। मैं जाने क्या-क्या सोचती चली गई। एक-एक पल में हज़ारों ख़याल आए और चले गए। मैंने ईश्वर को नहीं देखा पर अपने माता-पिता (सास-ससुर) के रूप में उनके दर्शन किए। मेरी उसी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि हर जन्म में मुझे वही माता-पिता मिलें। ☐

सुभाष चंद्र शर्मा

लक्ष्मी का वास

संसार में शक्ति के तीन प्रकार बताए गए हैं—शारीरिक, बौद्धिक और आर्थिक। हिन्दू धर्म में दुर्गा शक्ति की प्रतीक है, सरस्वती हमारी विद्या-बुद्धि की और लक्ष्मी समृद्धि की प्रतीक हैं। रुक्मिणी ने लक्ष्मी को चंचला देखकर उनसे पूछा था कि आप कहाँ पर विराजमान रहती हैं? तब लक्ष्मी ने कहा था—

"वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे
नरे कर्माणि वर्त्तमाने।
अक्रोधेन देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये
नित्यमुदीर्ण सखे॥"

मैं सुन्दर, मधुरभाषी, चतुर अपने कर्त्तव्य में लीन, क्रोधहीन बलशाली पुरुष के पास सदैव बनी रहती हूँ। सुंदरता के अतिरिक्त इन चारित्रिक गुणों का विकास मनुष्य संकल्प के साथ स्वयं कर सकता है, जितेन्द्रिय लक्ष्मी जी के प्रिय पात्र होते हैं। जहाँ श्रीहरि, श्रीकृष्ण जी, श्री शिवजी, दुर्गामाता की पूजा, कीर्तन आदि होते रहते हैं और जहाँ शंकर, तुलसी की सेवा वन्दना होती है, वहीं श्रीलक्ष्मी निवास करती हैं। जो व्यक्ति परिश्रमी, मेहनती होता है उसी के घर लक्ष्मी जी निवास करती हैं।

लक्ष्मी जी ने स्वयं कहा है कि जो स्त्रियाँ सत्यवादी, सदाचारिणी, निष्कपट, सरल स्वभाव में रहती हैं, वे मुझे प्रिय लगती हैं। आगे भी लक्ष्मी जी कहती हैं कि पतिव्रता, गुणवती, कल्याणकामिनी स्त्रियों के पास रहने में मुझे आनन्द आता है। श्रीहरि ने लक्ष्मी जी के स्वभाव के बारे में बताया है—जहाँ शंख ध्वनि नहीं होती, तुलसी और शालिग्राम का पूजन नहीं होता, शंकर की पूजा नहीं होती, वहाँ लक्ष्मी जी नहीं रहती।

जो व्यक्ति हरि के नाम का तथा अपनी कन्या का विक्रय करता है, जहाँ अतिथि भोज़न नहीं पाता, जो हिंसक हैं, जो दया रहित हैं, उनके घरों से जगत जननी लक्ष्मी चली जाती हैं। जो एकादशी, ज़न्माष्टमी को अन्न खाता है, उस व्यक्ति के घर से लक्ष्मी चली जाती हैं। जो कायर व्यक्तियों का अन्न खाता है, दिन में सोता है, निराशावादी है, नंगा होकर सोता है, उसके घर से भगवती लक्ष्मी चली जाती हैं।

अतः मैं दावे से कह सकता हूँ कि लक्ष्मी जी मिथ्यावादी, खोटे स्वभाव वाले, किसी की धरोहर मारनेवाले, झूठी गवाही देनेवाले, विश्वासघाती, भयभीत, कंजूस, दीक्षाहीन, चिन्ताग्रस्त, मंदबुद्धि, कलहप्रिय, क़र्ज़दार के घर पर कभी भी नहीं ठहरती हैं और साथ में बताना चाहूँगा कि नास्तिक के घर भी महालक्ष्मी नहीं रहती है, हाँ लक्ष्मी ज़रूर आती हैं।

स्त्रियों को ख़ास ध्यान रखना चाहिए कि लक्ष्मी उन घरों में नहीं ठहरतीं, जिस घर की स्त्री गृहस्थी के सामान को बेढंगे तरीक़े से छितराए रहती हैं, पति के बारे में प्रतिकूल बातें करती हैं, अपना मन दूसरे घर में लगाए रहती हैं।

लक्ष्मी को अर्थशक्ति भी कहते हैं। इसका हमारे जीवन में विशेष महत्त्व है। अनीति, पाप, झूठ तथा बेईमानी से कमाया हुआ धन अधिक नहीं ठहरता। ऐसा कमाया हुआ धन मनुष्य को शारीरिक रोग, द्वेष, व्यसन, व्यभिचार, चिन्ता और अहंकार आदि बुराइयाँ अभिशाप के रूप में देता है, जिससे अमीर व्यक्ति भी दुःखी और अशांत बन जाता है। लक्ष्मी जी तो इस बात का इंतज़ार करती रहती हैं कि व्यक्ति कब अनीति के रास्ते पर चले, ताकि कब उस अभागे के यहाँ से वह चली जाएँ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उद्योगपरायण को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है, आलसी को नहीं। आज के समाज का व्यक्ति विषय वासना की पूर्ति में लक्ष्मी का दुरुपयोग करता रहता है। धन के बुरे प्रभाव में पड़ जाने पर उसका घर और मन कुकर्मों का निवास बन जाता है। ऐसे मनुष्य में उदारता मिट जाती है, वासनाएँ उभर जाती हैं। अपने पद के अभिमान से निम्न पद के लोगों का तिरस्कार करता है, स्वयं तो चरित्रहीन, व्यभिचारी, परस्त्रीगामी होता है, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार में पी-एच.डी. प्राप्त कर लेता है परंतु बातें आदर्शवाद, सत्य की करता है।

तुलसीदास जी ने ऐसे व्यक्ति के लिए मानस में लिखा है कि वह अगले जन्म में मेंढक का जन्म पाता है। मेरी राय में यह मेंढक विक्रम सेठ की कविता 'मेंढक और बुलबुल' का

मेंढक बना रहता है, जो हज़ारों लाखों बुलबुलों का गला दबा देता है। ऐसे मेंढक आज के कलयुग में क़दम-क़दम पर मिल जाते हैं। एक बुलबुल का गला दबाया तो दूसरी बुलबुल चंगुल में फँसा ली। ये बुलबुले उस मानवरूपी मेंढक के लक्ष्मी अर्जन करने का माध्यम बनी रहती है। मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि उस मानव रूपी मेंढक से कि धन की शक्ति को उचित अभावों की पूर्ति में लगाए। धन का घमंड और धृष्टता का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। वर्ना वे बुलबुलें, जिनका उसने गला दबा-दबाकर अपना आर्थिक फायदा उठाया है, एक दिन उस मानव रूपी मेंढक का काल बनकर उसके घर में घुस जाएँगीं, क्योंकि उन बुलबुलों की आत्माओं को अभी स्वर्गलोक में जगह नहीं मिली है। वे आत्माएँ अभी भूतप्रेत की योनि में उस मेंढक के सिर पर मंडरा रही हैं।

□

भीम सिंह

आदमी की भूल

एक आदमी यमराज का परम मित्र था। दोनों में घनिष्ठ मित्रता थी, एक ही थाली में खाते थे। भाइयों-जैसा प्रेम था। जब वह आदमी कुछ बूढ़ा होने लगा तो यमराज ने एक दिन कहा, "मित्रवर, एक दिन आपको मरने के पश्चात् मेरे द्वार पर आना ही पड़ेगा।"

आदमी ने कहा, "ऐसा क्यों? आप तो मेरे मित्र हैं। आपको मुझे नहीं मारना चाहिए। मित्र होने के नाते आपको मुझे छोड़ देना चाहिए।"

यमराज ने कहा, "मेरी पुस्तक में छोड़नेवाला शब्द नहीं है। मेरे दरबार में सब बराबर हैं, मित्रता अपनी जगह है।"

आदमी ने कहा, "यमराज, अगर आप ऐसा नहीं कर सकते हैं तो कृपया इतना अवश्य करें कि जब भी आप मुझे अपने यमलोक में बुलाएँ तो मुझे पत्र ज़रूर डाल दें।"

यमराज मित्र की इस बात से सहमत हो गए और एक दिन वह घड़ी आ गई। यमराज ने आदमी को पत्र भेजे, परंतु आदमी ने समझा ही नहीं। एक दिन वह मर गया और यमराज के यहाँ आ गया। वह क्रोधित होकर बोला, "यमराज, आपने तो कहा था कि मैं आपको बुलाने से पहले आपके पास पत्र भिजवाऊँगा, परंतु आपने कोई पत्र नहीं भेजा। क्या आपने कहे शब्दों को भूल गए और सूचना दिए बिना ही बुला लिया। जबकि मैंने अभी अपने परिवार से कुछ वार्ता करनी थी।"

यमराज ने कहा, "मित्रवर, मैंने आपको चार पत्र भेजे, परन्तु आप नहीं समझे।"

आदमी ने कहा, "मुझे तो एक भी पत्र नहीं मिला, आपने कब भेजे?"

यमराज ने कहा, "मित्रवर, सुनो! सर्वप्रथम पहला पत्र तब भेजा, जब आपके कानों पर बाल आ गए, दूसरा पत्र तब भेजा, जब आपकी आँखें कमज़ोर हो गईं, तीसरा पत्र तब भेजा, जब आपके दाँत गिरने लगे और चौथा पत्र तब भेजा, जब आपके शरीर की चमड़ी सिकुड़ने लगी, परंतु आपने मेरे एक भी पत्र को नहीं समझा? क्या यह ग़लत है।"

आदमी ने तब अपने आपको ग़ौर से देखा कि उसके कानों पर बाल आ चुके थे, आँखें कमज़ोर हो चुकी हैं, मुख से दाँत निकल चुके थे, शरीर की चमड़ी पर झुर्रियाँ पड़ चुकी थीं। वह यमराज की बातों से सहमत हो गया। बोला, "ठीक है, मेरे समझने में ही कमी थी। जो कुछ आपने कहा, वह सत्य है। समय की पहचान करने में मुझसे भूल हो गई।"

सांसारिक प्राणी यह भूल हमेशा करते हैं। सोचते हैं—अभी तो बहुत जीवन है, हरि नाम का स्मरण बाद में कर लेंगे। अंत में वह हरि नाम से वंचित होकर अपना हीरा-सा जन्म यों ही गँवा बैठते हैं, और आवागमन के चक्कर में फँसे रहते हैं।

इसलिए मनुष्य को समय को पहचानते हुए हरि नाम का सहारा लेकर शुभ कर्म करते हुए अपने अनमोल जीवन को सुधार लेना चाहिए।

लाख चौरासी जौन में, मानुष देह प्रधान,
बिना भजन भगवान के, चली अकारथ जान।

□

हिन्दी : गांधी के विचार

समूचे हिन्दुस्तान के साथ व्यवहार करने के लिए हमको भारतीय भाषाओं में से एक ऐसी भाषा की ज़रूरत है, जिसे आज ज़्यादा से ज़्यादा तादाद में लोग जानते और समझते हों, बाक़ी लोग जिसे जल्दी सीख सकें और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है।

अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला हो तो निःसंदेह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों का, करोड़ों निरक्षरों का, निरक्षर बहनों का और दलितों और अंग्रेजों का हो और इन सबके लिए हो तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।

मुझे खेद तो यह है कि जिन प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी है वहाँ भी उस भाषा की उन्नति करने का उत्साह दिखाई नहीं देता है। मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी भाषाओं को उनके योग्य स्थान नहीं देते तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं।

भाषा माता के समान है। माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए वह हम लोगों में नहीं है। यदि हिन्दी भाषा राष्ट्रीय होगी तो साहित्य का विस्तार ही राष्ट्रीय होगा।

राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है।

मेरा यह मत है कि हिन्दी ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है, कोई दूसरी भाषा नहीं।



समापन समारोह में मुख्य अतिथि कृष्णा सोबती, ब्रजेन्द्र त्रिपाठी (बाएँ) और के. सच्चिदानंदन (दाएँ)

समापन समारोह में कृष्णा सोबती से पुरस्कार प्राप्त करते हुए शांता ग्रोवर साथ में खड़े हैं
के. सच्चिदानंदन (बीच में), देवेन्द्र कुमार देवेश (दाएँ)

साहित्य अकादेमी भारतीय साहित्य की सेवा करते हुए अपने पचास वर्ष पूरे कर चुकी है। अकादेमी ने साहित्य के माध्यम से राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों, समुदायों और भाषाओं को नज़दीक लाने का काम कि[illegible] है तथा भारत की जनता की भावनात्मक एकता को दृढ़ करने में सहायता की है। इसने भारतीय साहित्य की संघीय अवधारणा को निर्मित करने में अपना भरपूर योग दिया है, जो हमारे क्षेत्रों, वर्गों एवं समुदायों के विविध स्वरों को सँजोती है। इसने साहित्यिक गोष्ठियों, पुरस्कारों, अनुवादों, विनिबंधों, संदर्भ ग्रंथों, पत्रिकाओं एवं सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रमों के माध्यम से अप्रतिम सांस्कृतिक लक्ष्य को पूरा किया है। इसे आपके साथ सहयात्री एवं सहयोगी के रूप में और भी आगे बढ़ना है। हमारा साथ दें, साहित्य अकादेमी का मित्र बनें।

